

# गुरु शिष्य मीमांसा.

---

प्रथम, व तृतीय श्वेताम्बर यति कान्फरन्स के  
प्रेसिडट, प्राचीन शिलालेखों के ज्ञाता,  
मगसी तीर्थ कमेटी के मेम्बर, व  
इन्दोर जैन आत्मोन्नति  
सभा के अध्यक्ष  
माणकचन्द गुरु जगरूप यति.  
सकलित

---

धोन्डमो—विलास स्टीम प्रस, इदोर

सवत् १९७६ विक्रम )

( किम्मत ॥ आने



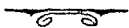
# मन्त्रालना

जैन मन्त्रालने, जैने, गृहस्थयोगों के लिये, शरमे के बार म  
 श्रुतानि, भद्रशास्त्रमहिता, विरर्णाचार, १ नीचिवाक्यामृत, पैंगे प्रार्थों  
 में, बुठ कठ मश्रीकरण किया है जैना जैन गुग्गुलु के मन्त्रम,  
 शरमे का निर्णय करने के लिये कोई स्तत्र प्रथ देखनेमें आता  
 नहीं पहिले यतिगो निर्मथ रहते थे, इम से इनर्म द्रव्यविषयक  
 विमत् होता न या अत्र कोई कोई यतिगो मन्त्रथ होगये हं द्रव्यादि  
 पाम रखते हं २ द्रव्यादिका के लिये चेरे वेगरे लटने हं उन के  
 निर्णय करने के लिये यत् योगमा मन्त्र, जैन गार्ह्वानुमार श्रियाकर  
 प्रकृत किया है इम को पाठक गण मना कसम कि, वेगसा क्या  
 हय है, ३ गुग्गु ना क्या अधिकार है

मन्त्र १०७५ विक्रम  
 शाखा शरीर

माणकचन्द्र गुग्गु जगरूप यति

प्रथम ३ गुग्गु यान वाचस्पति ४ प्रेमिष्ठ  
 प्राप्ति गिला छयाक जना  
 मरुती ना ३ कर्मगक मन्त्र  
 इन्दौर गीत शास्त्रानि ममा ४ अश्वध





# \* गुरु शिष्य मीमांसा \*



हस्त्य लोगों के दायभाग व वारसे के सव्यम वादप्रश्न नियम का निर्णय करने बाद जैसे हिन्दुलोगोंमें मनुस्मृति, मिताक्षरा, व्यवहार मयूख, सस्कार कौस्तुभ, याज्ञवल्क्य स्मृति व बहुतसी सहितायें रंगेरे मय हैं, वैसे मुसलमानों धर्ममें भी शाह वैगरे मय हैं और जैन धर्ममें भी अर्हन्नीति, नीतिसाक्यामृत, त्रिवर्णाधार, और भद्रनाहुसहिता रंगेरे मय हैं

हिन्दु गृहस्थ लोगों के दायमयत्र की, व वारसे की, मीमांसा, शुक्र शोणित पिंडदानादि कार्य कारण से किई जाती हैं, और यमन लोगोंमें दुग्ध वैगरे के विचार से वारसे का विचार होना है परतु जैन यति सम्प्रदाय का एक भिक्षुकर्ग है उसमें जो पहिले पहिले पति ( साधु ) होना चाहता है तम को उसका खुदका सर्वद्रव्यादि वस्तु मान व कुटुम्बपरिवार का शय्य पुर<sup>सर</sup> त्याग करना पटना है, व यानजीव कोई प्रकार का मृच्छगनक द्रव्यादि वस्तु ग्रहण कल्गा नहीं यानजीव शरीर की शुधूरा छोड गु<sup>रु</sup> आनापाग, व -गुरुनेना भाजम पर्यन्त कल्गा जेमी शय्य शिष्य होनेवाग सर्व समुदाक ये-

समक्ष तीन \* वचन अंगीकार करना है, तब गुरु उसे दीक्षा देता है उस वचन से दीक्षा लेनेवाला गुरुका शिष्य (दास) होता है गुरु उस को अपने पास रखे, या दूर करदे, अधिकार गुरु को है शिष्य का अधिकार गुरु पर कोई प्रकारका रहता नहीं

मनुष्य, कई प्रकार से साधु होता है कोई भयसे साधु होता है कोई निरयोगसे साधु होता है कोई द्वेषसे, कोई क्रोधसे, कोई लोभसे, कोई केवल उदरपूर्ति के लिये, व कोई दुःख से ऐसे अनेक कारणोंसे साधु होता है और कोई ससार से अत्यंत विरक्त होकर सर्व सग परित्याग कर निरक्त वृत्तिसे धर्म करने के निमित्त भी साधु होता है परंतु मुख्य करके सर्वसाधुओं का ध्येय एक निरिच्छता है गुरु के पास दीक्षा लेता है तब शपथ पुर सर सर्व सग परित्याग करके ही साधु होता है और आगामी कालमें भी कोई प्रकार की भोजन वस्त्रके सिवाय द्रव्यादि किसीसे न लेने की गुरु के समक्ष प्रतिज्ञा कर लेता है इस से उस को कोई प्रकार का दाय मिलता नहीं यह सिद्ध है धर्मान्तर होकर जो गुरुके कुटुंबमें रहता है, व गुरुने जिनपर अपना रत्न रखकर निदाभ्यासादि कराया है और पावन पोषणादि की क्षति उठाकर निपुन बनाया है व जो गुरुके कुल का हित कर्त्ता है व गुरु कथित धर्म पर दृष्टश्रद्धा रखकर धर्म पालन करता है वह शिष्य गिना जाता है और उन शिष्योंमें भी जो अधिक श्रेष्ठ हो उही को गुरु उत्तराधिकारी करता है अगर उनमें भी कोई योग्य न मिले तो दुसरे किसीको, जिनपर गुरु प्रसन्न हो उस को अपना

\* करेमि भते सामाद्य स व सायज्ज जीय पचरखामि जावजीव पञ्चुवासामी दुव्वेद तिविहण, मणेण वायाए वाएण न करेमि, न कारवेमि धरस अण्ण न समणुजाणामि तस्स भवे पण्डितमामि त्रिदामि गिरिहामि अपाण धामिरामि

उत्तराधिकारी बनाने का मुखयार है. शिष्य तो दीक्षा लेने समय पहिले ही मे जन्म भरणे लिये मर्त प्रकार का परिग्रह ग्रहण करने का याग करचुका है शिष्यों को गुरु आना बिना कुठ भी करने का अख्यार व नियम नहीं है (देखो उत्तराख्ययनसूत्र टीका ऋकता ज्ञापात्री सवन् १९३६ की पृष्ठ ३३९ )

## जैन सूत्र सुगडांग की टीकामें दो प्रकार के शिष्य कहे हे.

“ गिष्योद्विविधो द्विप्रकारो ज्ञानयो भवति, तद्यथा प्रव्रज्यया शिक्षयान्त्र यम्य प्रव्रज्यादीयते, शिक्षा, वा यो प्राव्यते स द्विप्रकारोपि, गिष्यइह शिक्षा गिष्येण प्रकृत मधिकारो, यः शिक्षा गृण्टानि शिक्षक स्तठिक्षयेह प्रस्ताव इत्यर्थ ”

अर्थ—शिष्य दो प्रकार के जानने लायक हैं एक दीक्षा दिया हुआ गिष्य, दूसरा शिक्षा दिया हुआ गिष्य, यहाँ शिक्षा शिष्य का प्रस्ताव है (सुगडांग टीका मुम्बईकी छठी पृष्ठ ९१० )

## जैन ठाणांगसूत्रमें चार प्रकारके शिष्य कहे हैं!

“ प्रव्राजनात्नेयासी नाम का एक, ” जो गुरुके पास व्रत नियमादी न लेते, गुरुमे दीक्षा ले कर, आजन्म गुरु के पास रहे वह दूसरा उपस्थापनात्नेयासी, अर्थात् गुरुसे दीक्षा न लेने केवल व्रत



नियम लेनेवाला तीसरा प्रजाजनान्तेवासी, भी व उपस्थापनातेवासी भी अर्थात् दीक्षा व व्रत दोनों ग्रहण करनेवाला, चतुर्थ धर्मातेवामी अर्थात् दीक्षा व व्रत न ग्रहण करने धर्मोपदेशसे प्रबुद्ध हुआ हो जिसका मूलपाठ यह है

“ चत्वारि अनेवामी पण्णत्ता, तजहा, पञ्चायणातेवासी णाम मेगे, उरुद्वयणा तेवासी ३ धम्मतेवासा ४ टीका—अ ते\* गुरो समाप वस्तुशील मस्यान्तेवासी, शिष्य प्रजाजाया दीक्षया अनेवासी दीक्षित इत्यर्थ उपस्थापनातेवामी व्रतारोपणत शिष्यइत्यर्थ—चतुर्थभागस्य वर्मान्तेवासी धर्म प्रतिबोधनत शिष्यो धर्मार्थितयो पमपन्न इत्यर्थ

( कलकत्तेका छपा पृष्ठ २८२ )

— — —

**जैन धर्ममे आचार्य (गुरु) चार प्रकार होते हे.**

“ एक व्रतादिधर्मकृत्य न कराते केवल दीक्षा देनेवाले आचार्य १ दूसरे उपस्थापनाचार्य अर्थात् दीक्षा न देते केवल व्रत नियमादि धर्म कृत्य करानेवाले आचार्य २ तीसरे प्रजाजनाचार्य व उपस्थापना चार्य अर्थात् दीक्षा व व्रत दोनों कृत्य करानेवाले आचार्य ३ चतुर्थ धर्माचार्य याने दीक्षा व व्रत न कराते केवल धर्मोपदेशसे प्रतिबोध करनेवाले ( पृष्ठ २८२ ठाणागसूत्र )

इसका मूल पाठ

“ चत्वारिआपरिणा पण्णत्ता तजहा, पञ्चायणापरिण नाम मेगे णःउरुद्वयणापरिण १ उरुद्वयणापरिण नाम मेगे णो पञ्चायणापरिण २

एगो पञ्चायणायरिषि उग्रशयणायरिषि त्रि ३ एगो णो पञ्चायरिषि णो उग्रशयणायरिषि धम्मायरिषि ४ ( आहच ) धम्मोजेणुवड्ढो, मो धम्म-गुरु गिहंउसमणोवा-कोवि तिहि सपउत्तो, दोहि त्रि एक्केक्केचेव अर्थात् जिसने धर्मोपदेश दिया है वही धर्म गुरु है चाहे साधुको चाहे गृहस्थ हो, कोई तीनों प्रकारका होना है कोई दो प्रकार का होता है कोई एक एक प्रकार का होता है

## शिष्यशब्द की व्याख्या.

अमर कोष के द्वितीय कांड के ब्रह्मराममें शिष्य के नाम तीन बतगये हैं “ छात्रान्तेवासिनौ शिष्ये ” इस की संहृतमें टाका लिखी है कि “ छात्र अन्तेवामी ( अन्तेवामीत्यपि ) शिष्य श्रीणि-गुरो र्दोषागृह्यतन त छीलमम्य छात्र, शीर मनुवर्तमाने उत्रादिभ्योण इतिणप्रचय अन्ते सर्वापे वस्तु शील मस्याते वासी ”

इस का आशय है कि, शिष्य के नाम तीन हैं छात्र अन्ते वासी ( अन्तवासी ) और शिष्य छात्र याने गुरु का दोष ढाकने वाला, अन्तेवासी वा अन्तवामी अर्थात् पाम रहने वाला और शिष्य, शिक्षा ग्रहण किया हुआ

### हेमचन्द्र कोषमें शिष्य के वास्ते

शिष्यो विनेपोऽन्तेवासी—ऐसा लिखा है अर्थात् शिष्य शिक्षा ग्रहण करने वाला, विनेय याने विनय करने वाला, व अन्तेवामी, अर्थात् पाम रहने वाला

जैन शास्त्रोंमें शिष्य शब्द का प्रथम प्रयोग होने के लिये शिष्य के स्थान पर अन्तेवासी शब्द का उद्देश्य किया है और यह शब्द बहुत ही सार्थक मानकर जैन शिष्यों के लिये अन्तेवासी शब्द का ही प्रयोग किया है देखो कल्पसूत्रमें

“ सप्तमम् भगवतो महावीरस्य वासवगुत्तम्, अजसुहम्मे धेरे अन्तेवासी अग्निवेशायण गुत्ते धेरस्मण अजसुहम्मे अग्निवेशायणस्त गुत्तस्त अजसुहनामे धेरे अन्तेवासी वासवगुत्तेण धेरस्मण अजसुहनामम् कचायणस्त गुत्तस्त अजसुहमे धेरे अन्तेवासी कचायणम् गुत्ते धेरस्मण अजसुहमस्त कचायणस्त गुत्तस्म अजसुहमे धेरे अन्तेवासी मणगापियारुहमगुत्ते ” इत्यादि

अर्थ—धर्मण भगवन् काश्यपगोत्रीय महावीर के अन्तेवासी, अग्निवेशायन गोत्रीय सुधर्मस्वामी—अग्निवेशायन गोत्रीय श्वविर आर्य सुधर्म के अन्तेवासी, काश्यपगोत्रीय आर्यजबुस्वामी—काश्यपगोत्रीय आर्यजबुके अन्तेवासी, कात्यायन गोत्रीय आर्यप्रभन आर्यप्रभन के अन्तेवासी, मनकपिता व ठसगोत्र आर्य शश्वभन इत्यादि

इस तरह जैन शास्त्रोंमें जहाँ जहाँ शिष्य नाम आये हैं, वहाँ वहाँ शिष्य शब्द की जगह अन्तेवासी शब्द ही लिखा गया है किमी आचार्य से या गुरु से शिरमुडा लेनेसे, या कोई से धर्म ग्रहण कर लेने से, अथवा महाने दो महाने या वर्ष दो वर्ष गुरु के समुदाय में रहने से अन्तेवासी नहीं हो सकता जो आत्म गुरु की सेवा तन मन से करता है, गुरुका हित करता है गुरु के पास सोता बैठा है, गुरु की आज्ञा का पूर्णतया पालन करता है, उस को ही यदि गुरु प्रसन्न हो, तो अपना उत्तराधिकारी बना सकता है परन्तु यदि उस को भी गुरु योग्य न देखे, तो दूसरे किमी को, चाहे

निसको गुरु अपना पद दे सकता है. चेलों को गुरुसे कुछ लेने का या मागने का कोई हक सब्र या अधिकार नहीं है ऐसा जैन ग्रंथोंमें स्थान स्थान पर टटैख दे

शिष्य यह एक गुरु का दास है गुरु जब चाहे उसे अपने पास से निकाल दे और गुरु जब चाहे अपने पास रखले गुरु पर शिष्य का कोई हक नहीं. यति का नाम कोषोंमें "मुमुक्षु" धमण यति राचयम व्रती-साधु-अनगार ऋषि निग्रय, और भिक्षु ऐसे अनेक नाम हैं उनमें यतिको अनगार याने घर रहित, व निर्प्रथ याने कोई प्रकारका द्रव्यादि पास न रखने वाला व भिक्षु याने भिक्षा मागने वाला है ऐसा यति का कर्तव्य बताया है ऐसी अवस्थाम गुरु की आज्ञा या अनुमति सिनाय शिष्य को कैसे कोई पद या अधिकार मिल सकता है गुरु केवल धर्मोपदेशक होता है

## शिष्य के लक्षण उत्तराख्ययनसूत्रमें पृष्ठ ३३५

वसे गुरुकुले निच, जोगय उपहाणत्र । पियकरे पियवाई स  
सिखल्लहु मारई

उत्तराख्ययन कलकत्ता उपेकी अख्यन ११ गाथा १३ वीं  
- स मुनि भिक्षा ल्पु मर्हति शिक्षायै योग्यो भवति स शनिक  
यो गुरुकुले नित्य वसेन, गुरो पूज्यस्य, विद्या दीक्षा दायकस्य वा, कुले  
गच्छे, सग्राटकेना यावज्जीव तिष्ठेत् पुनर्या मुनि योग्यान् योगोऽर्म्भ्यापार  
स विद्यनेयस्य न योग्यान् अत्रा योगोऽष्टाङ्ग लक्षण स्तत्रान् इत्यर्

पुनर्य साधु उपमानवान् उपमान अङ्गोपाङ्गादाया सिद्धान्ताना पठना-  
 राधनार्थं माचाम्भोपवास निर्विकृत्यादलक्षण तपोविशेष, स विद्यो यस्य  
 स उपमानवान् सिद्धान्ताराधनोपयुक्त इत्यर्थं पुनर्य साधु प्रियकर  
 आचार्यादीना हितकारकः, पुनर्य प्रियवादी, प्रियोवादोऽभ्यास्ताति  
 प्रियवादी, एतैर्लक्षणैर्युक्तो मुनि शिक्षा प्राप्त योग्यो भवति

He who always\* acknowledges his allegiance  
 to his teacher who has religious zeal and ardour  
 for study, who is kind in words and actions,  
 deserves to be instructed (14)

Sacred books of the Part vol ( XLV Page 47 )

आशय—यह मुनि शिक्षा पाने योग्य है—जो गुरुक कुलमें  
 अर्थात् विद्या वा शिक्षा देनेवाले पूज्य गुरुके समुदायमें यात्रावीन  
 रहताहो और, जो मुनि कम-व्यापार वालाहो, अष्टयोग साधना करने  
 वाग हो, आचार्यादिक का हित करनेवाला व प्रिय बोलनेवाला हो  
 वह शिक्षा ग्रहण करने के योग्य होता है

## योग्या योग्य शिष्यकी व्यवस्था उत्तराध्ययनमे

- 1 जो शिष्य अपने गुरु का आज्ञाम वाच्य रहता है व नित्य  
 गुरु के दृष्टिगोचर रहकर शिर झुकाता है यह अच्छे चलन  
 वाग चेला समाना जाता है

\* Laterally, who always remains in  
 teacher's lula

- २ परंतु जो शिष्य अपने गुरु की आज्ञापर चलता नहीं, और गुरु की दृष्टि में दर रहकर सनाप देता है व गुरु के प्रतिकूल होकर गुरुका उग्रान्वेषी होता है वह अपयोग्य शिष्य है
- ३ जैसे मडे कानवाली कुत्ती सब जगह से निकाली जाती है, उसी तरह उस प्रयत्नीक ( प्रतिकूल ) को भी निकाल देना चाहिये

A monk who, on receiving an order from his superior, walks up to him, watching his Nods and Motions, is called well behaved (2)

But a monk who, on receiving an order from his superior, does not walk up to him, being insubordinate and inattentive, is called ill-behaved (3)

As a bitch with sore ears is driven away every where, thus a bad, insubordinate and talkative ( pupil ) is turned out (4)

Sacred books of the East vol XLV Page 21

## योग्य शिष्यः

हेमचन्द्र स्वामीने अपने योग्य शिष्यको उत्तराधिकारी बनाया  
देखो प्रभावक चरित्र

राजा श्री मिहिराजेना न्यदाच युयुजे प्रभु । भवता कोत्ति  
पश्य योग्य शिष्यो गुणाधिक १२९ तम स्माक दर्शयत चित्तोत्कर्ष

मा भिन्न अपुत्रमनुकपाह पूर्वैत्रा मास्य शोचयत् १२० आह श्रीहेमचन्द्रश्च  
 न को प्येति चिन्तक । आचोष्यभु दिलापाल सत्यात्राभोदिन्द्रमा  
 १३१ सञ्ज्ञानमहिमस्यैथ मुनीना रिन्न जापते, कल्पद्रुमममे रुद्धि  
 त्वपीद्यशि कृत स्थितौ १३२ अत्या मुष्यापणो राम चन्द्राय कृति  
 शेखर । प्रातरेख प्रातरूप सधे विश्वकल्पाधि १३३ (स ११९०)

### अर्थ

एक दिन राजा सिद्धराजने प्रभु हेमचन्द्रमुरिसे कहा कि आपका  
 कौनसा शिष्य गुणोंमें अधिक पात्र लयक है मुझे अपुत्रिक व  
 अनुकया के लयक मानकर चित्त उत्कर्ष के लिये पूर्वके लोगों  
 का शोच न करते मुझे उम गिष्य को दिखायें हेमचन्द्र बोले कि  
 सत्पात्र के समुद्र या चन्द्र शुद्धिपात्र पहिला ( नू ) है, वैसा तो  
 कोई भी हितचिन्तक है नहीं कल्पद्रुमके समान तेरे सन्त राजा के  
 होते मुणियों के ज्ञान सहित महिमा की स्थिरता क्या नहीं होगी ?  
 हमारे जगतका व चन्द्र के समुद्रायमें कार्य करने वाला मुख्य नाम  
 पाया हुआ, व सुन्दर स्वर्ण पाया हुआ रामचन्द्र नाम का (शिष्य) है

### योग्य शिष्यः

गुणाकरमुरिने अपने योग्य शिष्य कालमुरि को  
 उत्तराधिकारी बनाया प्रभावकचरितपृष्ठ ३८

“स्वे पदे क्लृप्त योग्य प्रतिशय्यगुरस्मन् श्रीमान् गुणाकर सुरि  
 प्रेत्यकार्याण्यसाधयन् २९.

अर्थ

श्रीमान् गुणाकर सरि ने अपने योग्य शिष्य ( लायक शिष्य ) को अपने पापपर त्रेछ कर आपने परलोक साधन किया

आर्य सुहस्तीने भी अपने श्रेष्ठ शिष्य को ही  
उत्तराधिकार दिया

परिशिष्ट पर्वन् पृष्ठ २९३ स्वविद्यया हस्मन् जाकोबी की कल्कत्तेकी मुद्रित " भगवा नार्य सुहस्यपि गच्छ, समये नर गिष्याय समर्थ विहितानशन स्यक्ता देह, मुरलोका तिविता प्रानिपेदे आर्य सुहस्ती का मृषु नीर निर्माण स २९१ में हुवा

अर्थ

" भगवान् आर्य सुहस्ती भी समय ( अतकाल के समय ) म श्रेष्ठ शिष्य को गच्छ ( समुदाय ) सुपुर्द कर आप अनशन अर्गन् ( अन्न पान का त्याग ) कर देवलोक के पाहुना हुये

जैन संप्रदायमें चेन्ने के लिये शिष्य-छात्र विनय अन्तेयासी वगैरे बहुत से शब्द हैं. उनम अन्तेयासी यह श द बड़े महत्व का है अथात् जो शिष्य गुरु के पाम अजम पर्यन्त रहकर, गुरु का ठिट्ट दाके, गुरु की आज्ञा पाले, गुरु का हित करे गुरु की शुधपा करे, गुरु की आज्ञा उल्टान न करे, धर्मवृत्ति से गुरु के वृत् की मर्यादा रखे, ऐसे सद्गुणी शिष्य को गुरु योग्य समझता है और उस का योग्य आदर करके गुरु अपना उत्तराधिकारी बनाने की भी कामना रखता है .



शिष्य शब्द के ब्रह्म के लिये बहुत प्राचीन वाच से अन्तेयासी शब्द जैन संप्रदायमें प्रसिद्ध है इसी सन के पहिले शताब्दी के आस पास शिष्य को बहुधा अन्तेयासी ही लिखने में देखो पभोमा और मथुरा के जैन लेख और महाक्षत्रप शोडास के लेख, जो राजवहादुर गौरीशंकर हीराचन्द्रजी ओझाने राजपूताना म्यूजियम अजमेर " में " भारतीय प्राचीन लिपि माला ' नाम का ग्रंथ छापा है उस के पाचमें प्लेट की नकल इस ग्रंथ के पृष्ठ ९३ ९४ में है यह प्लेट ब्राह्मी लिपि का है इसमें " अन्तेयासी " शब्द है इसकी नकल नीचे प्रमाणे है

- (१) " नमो अरहतो वर्धमानस्य गोतिपुत्रस्य पौषशकवा
- (२) छम कोशिकिये शिमित्राये आयागपत्तोप
- (३) समनस महारखितास आतेवासा वच्छीपुत्रस सायकास
- (४) उत्तरदासकम पसाद तोरन अधिष्ठत्राया राजोशोन
- (५) कायनपुत्रस्य रने (ओ) तेरणी पुत्रस्य
- (६) भागरनस्य पुत्रेण वैहिदरीपुत्रेण अ (आ) पात्मेनेन कारित -

इस लेख से यह स्पष्ट होता है कि, पुराणे जमानेमें जो शिष्य अपनी जिंदगी गुरु की सेवामें आजम रिताता था वह अन्तेयासी गिनाजाता था और वैसे ही जो गुरु प्रसन्न हो कर अपना अधिकार भी देता था

**आर्य महागिरिगे अपने छोटे भाई को उत्तराधिकार दिया**

आर्यमहागिरि आचार्य ने, बहुत से शिष्य में, तोभा उन्होंने शिष्यों को छोड़कर अपने छोटे भाई आर्यमुहम्मतिमूरि को, उत्तराधिकार दिया ( वीर निर्वाण सत्रन् २४६, में परिशिष्टपर्यं पृष्ठ २७७

## योग्य शिष्यको अधिकार.

महावीर स्वामीके निर्माण बाद १८४ वर्ष बीते आर्यरक्षित सुरि हुये उनके गोप्रामाहिल १ फल्गुरक्षित २ और दुर्बलिकापुष्प ३ ऐसे तीन चेले थे उनमेंसे सबसे छोटे शिष्य दुर्बलिका पुष्प को आर्य रक्षितसूरिने अपना स्थान दिया

उत्तराध्ययन कलकत्तेकी उषी पृष्ठ १६४

## योग्य शिष्य.

यति संप्रदाय मे यह नियम हे कि—गुरु पर शिष्यका कोई प्रकारका हक्क नहीं गुरु, यदि प्रसन्न होतो, चाहे, अनेक शिष्य हों तोभी, वह एकही शिष्य को, कि जो सदा गुरु सेवा में जीवन व्यतीत करे, उसीको उत्तराधिकारी बनाये यदि शिष्य एकभी योग्य नहीं होने तो, गुरु अथ धर्मीको भी धर्मोपदेश देकर जैना करके, उसको अपना उत्तराधिकारी बना सकता ह चेलोंका गुरु पर कोई अधिकार नहीं

गुरु का कर्तव्य. प्रभाकर चरित पृष्ठ २९-६

देवचन्द्रमरिजे शिष्य हेमचन्द्रसुरि को सर्व शिष्योंमें मुख्य मान

देवचन्द्रमरिने अपना उत्तराधिकारी बनाया उसका वृत्त

प्रभाकर धुरधुर्य ममु सरिपदोचितम् । विज्ञाय सत्र मामव्य  
गुत्रोऽमत्रय निति ४७ योग्य शिष्य पदेयस्य स्वकार्य कर्तु-  
मौचिनी । अस्मन् पूर्वऽमु माचार सदा निहित पूर्णि ४८  
श्री गौतमादि सुरीणै रारापित मत्रापितम् । श्रीदेवचन्द्रगुरत्र सूरिमत्र  
मचीकरन् ९९

अर्थ—इनको ( हेमचन्द्रसूरिको ) प्रभावकर्ता बुरा सभालने वाले और सुरिपद के लायक जानकर, गुरु ( देवचन्द्रमूरि ) ने सर्वसमुदाय को बुलाकर कहा, कि, योग्य शिष्यको पाट पर रखकर अपना कार्य करना उचित है व यही आचार हमारे पूर्वजोंने हमेशा किया है व गौतमादिगणधरो ने बिना बाधा आराधन किया है ऐसा कहकर देवचन्द्र गुरुने हेमचन्द्रसूरिको सुरि मंत्र कहा और अपना उत्तराधिकारी बनाया

## यति के लक्षण.

नीति वाक्यामृत ( सवन् १०८४ )

सोमदेवमूरि हृत

“य सम्यग् विद्यानौ लाभेन तृष्णा सरित्तरण प्रयोगाय पतते सपति पृष्ट ८

अर्थ—जो अच्छा विद्यारूपी नावके लाभमे तृष्णानदीके तिरने के काम में पत करता है वह यति है

नातिवाचपामृत पृष्ट ११

गुरुजन शाल मनुमरति प्रायेण शि या

अर्थ—प्राय करके चले गुरुजन का ही अनुसरण करते हैं

यति के लिये प्रायश्चित्त

नीतिवाक्यामृत पृष्ठ १७

जिनागमोक्त मनुष्टान मेव समस्तपतीना स्वोधर्म, धर्मव्यतिक्रमे यतीना जिनागमोक्त मेव प्रायश्चित्तम्.

अर्थ—जैनागमर्म कहा हुआ अनुष्टान ही सर्वयतियोंका स्वधर्म हे धर्म का मार्ग जोडनेसे जैनशास्त्र में कहा हुआ ही प्रायश्चित्त हे

॥ गुरु कोप शान्तिः ॥

नीतिवाक्यामृत पृष्ठ २०

प्रणामावमान कोपो गुरुणाम् गुरुणाकोप प्रणामपर्यन्त एव, प्रणामानतर प्रसाद

अर्थ—गुरुका कोप प्रणाम पर्यन्त ही हे प्रणाम के पीछे प्रमत्तना हे

संस्कार विहीन शिष्य

नीतिवाक्यामृत पृष्ठ २३

स्व जानियोग्य संस्कार हीनाना, राज्ये प्रव्रज्याया, नास्याधिकारः,

अर्थ—अपनी जाति के योग्य संस्कार विना राज्यमें व दीक्षामें अधिकार नहीं.

## शिष्य दोष प्रतीकार

नातिशयामृत पृष्ठ १०७

मद्र प्रमादजे दोषे, गुरुषु निवेदन मनुप्रापश्चित्तच प्रतीकार —  
मद्र व प्रमादसे हुये दोषामें गुरुमें निवेदन करना बाद प्रापश्चित्त  
करना यह प्रतीकार है

## केवल शिष्यही अधिकारी है

यति सम्प्रदाय में केवल शिष्यही अधिकारी होता है

शिष्य सित्राय दूसरा अधिकारी होता नहीं देखो सोमदेवमृति  
वृत्त “ नीतिशयामृत ” मुद्रइ अपेक्षा पृष्ठ १३९

“देश कुलापन्य स्त्री समयापेक्षो दायात् विभागोऽपत्र यति  
कुलान् तत्रैरु ण्वभवति तन्यार्ह”

अर्थ—यति कुलसे अन्यत्र, देश कुल अपत्य व स्त्री का  
दायादन्त विभाग समय की अपेक्षा से होता है

टीका—दायाधिकारिणो न सर्वेषु देशेषुच समाना यथा  
केरल देशे सपपि पुत्रे भगिनेन एव दायाधिकारि नान्य । एव मेव  
केपुचित्तकुलेषु दौहित् ॥ यति कुले जैन धर्मीय यति (भावाया जती)  
कुले शिष्य एसाधिकारी

अर्थ—दायाधिकारी सर्वदेशमें समान नहीं होते जैसे केरल  
देशमें पुत्र होनेभी, भागनेय ही दायाधिकारी होता है, दूसरा नहीं  
इसी तरह कोई कुलमें दौहित्, और यतिकलमें, याने जैन धर्मीय जती  
कुलमें, शिष्यही अधिकारी होता है

शिष्य के वारेमे गुरुका अंगीकार बसहे.

वीरचरितमें व भगवती सूत्रके

अतक १५ उद्देश १ में



एक गोशाला नामका महावीरस्वामी का चेला या उसका वृत्तान्त है कि, गोशाला को महावीरस्वामीने न तो दीक्षा दी थी, न प्रतीति हिग्रहण कराया था, न विद्या पढ़ाया या न धर्मोपदेश दिया था और न कभी वासक्षेप मस्तकपर किया था केवल गोशाला की विज्ञप्तिका अनादर न किया, इतनाही महावीरस्वामी का स्वीकार था उसपर से गोशाला महावीर का शिष्य था ऐसा मानाजाना है उस बारेमें लिखा है कि “ गोशाला ने महावीरस्वामीसे कहा था ” कि आप मुझे शिष्य मजूर करें यात्रजीव मेरे गुरु होंगे आपके बिना हे परमेश्वर? मे किचिमात्र भी नहीं रह सकता आप नीरागी हो, आप पर खेह कैसा? एक हाथसे ताली नहीं धरती किंतु स्वामिन् मेरा मन जबरदस्ती आप के तरफ दौडता है

फिर गोशालाने कहा “ आपने मुझे अंगीकार कर लिया है, यह मैं जानता हू तो भी, आप अपने निकासित कमलसदृश नेत्रों से मुझे देखें ” भगवान् नीरागी थे, और होने वाला अनर्गल जानते हुये थे, तोभी, भगवान ने गोशाला का वचन स्वीकार किया महात्मा पुरप क्रिमपर नहीं खेहयुक्त होते?” ऐसा वीर चरित, व भगवती सूत्रमें उल्लेख है भगवती सूत्रमें इसका विस्तार अधिक होनेसे यहां नहीं

लिखा मो जिज्ञासु मृग प्रथ मागधा देखें, वीर चरित का मूल  
मरुत इम प्रमाणे है

हेमचन्द्रमृरिक्त वीरचरित जन्म ११४५, आ ११६०

गिष्यस्नेह भविष्यामि त्वमेक शरण मम ।

इत्युक्त्वा स तत्रा चक्रे तृणाको स्वात् प्रभु. पुन ॥ ८६ ॥

गोशालो भिक्षया प्राणवृत्तिं कुर्वन् दियानिगम् ।

नामुच स्थामिन पार्श्वे स्वयुद्धया शैष्यता कृत ॥ ८७ ॥

प्रतिपद्यन्व मा शिष्य यावज्जीवद् गुरु भवे ।

त्वा भिने पन्पि स्वातु नक्षमे परमेश्वर! ॥ ९ ॥

नीरामे त्वपि क खेरो नै क हस्ता हि तालिका ।

स्वामिन मम मन विन्तु क्वा च्चा मनुभावति ॥ १० ॥

त्वया म्युपगत स्वतु जानाम्ये प तथापि हि ।

भेराद्यभित्सद्धीष्या दशा मा य त्रिरिक्षसे ॥ ११ ॥

नीरामोपि भाव्यनर्ष तद्भवश्च विदत्तपि ।

तद्भव प्रत्यपादी गो महान्त क न उम्ल ॥ १२ ॥

जैन धर्ममें गिष्यों के अनेक गुरु

कोई पालन करने से, कोई विद्याभ्यास कराने से, कोई पदवी  
दान देने से, कोई दीक्षा देनेसे, कोई व्रतनियमादि कराने से, ऐसे  
अनेक गुरु होते हैं

## एक शिष्य के दो गुरु होने के प्रमाण

### द्विगुरुः

स्थूलभद्र के दो गुरु ये दीक्षागुरु सम्भृतिविजय, दूसरे भद्र-  
बाहु, गुर्वाचली ज्ञानीस्थ यशोविजय पाठशाला मुद्रित पृष्ठ ४

“ सम्भृति विजय नामा तस्यविनेय स्तनोतु श प्रथमः य  
त्यदपन्नोपान्ते प्रयजित स्थूलभद्रगुरु ” अत्रिंशत् पूर्वभृता द्वितीयो  
श्रीभद्रबाहुश्च गुरु शिष्याय । कृतोपमर्गादिहरस्तत्र यो रक्ष सत्र धरणा-  
र्चिताहि १२ निर्वृद्ध सिद्धान्तपयोपि राय स्वर्गश्च वीरात् खनगेन्दु  
( १७० ) वर्षे । तयोर्विनेय कृतविश्वभद्र श्रीस्थूलभद्रश्च ददातु  
शर्म १३

### अर्थ

उन ( यशोभद्रसुरि ) के प्रथम शिष्य सम्भृतिविजय, मगल करो  
कि जिन के चरण कमल के निकट स्थूलभद्रगुरु ने दीक्षा ली दूसरे  
पूर्वचारियोंमें मुख्य श्रीभद्रबाहुस्वामी, मगल करो कि जिन्होंने धरणेन्द्र  
चरण पूजित उपसर्गहरस्तोत्र से श्रीसत्र ( समुदाय ) की रक्षाकरी  
और प्रथम समूह को मयनकर महावीरस्वामीके निर्माण के १७० वर्ष  
वीने, स्वर्ग गये इन जगत् के कल्याण करनेवाले दोनों ( सम्भृतिवि-  
जय व भद्रबाहु ) के शिष्य स्थूलभद्र मूल देखो

8 Bhadrabahu, He succeeded Sambhuti  
Vyjay although he was not his disciple, but a  
brother disciple

Epitome of Jainism,  
( page 666 )



## द्वि गुरुः

अभयदेवसूरी के दो गुरु थे एक जिनेश्वरसूरी  
व दूसरे बुद्धिसागर

यह बात खास अभय देवसूरिने समजायान सूत्रकी टीका का प्रशस्तिमें द्रिकुम सन् ११२८ के सालमें लिखा है देखो

“ नि सन्न निहार हरिचरितान् श्रीऽर्द्धमानामिगान् सूरीन्  
व्यानगतोऽत्र तीव्र तपसो ब्रह्मप्रणीतिप्रभो ॥ श्रीमसुरिजिनेश्वरस्य जयिनो  
दर्शयिमा वाग्मिना तद्वचो सपि बुद्धिमागर इति एषानस्य सूरे भुवि ॥  
शियेणा भयदेवसूरिणा विवृति कृता। श्रामन समजायाएय तुया-  
गस्य समासत ॥

### अर्थ

किमी प्रकार के सन्न रिता परिश्रमणसे जिहोका मनोहासी चरित है उसे र्द्धमानसरि का ध्यान करने वाले व अतिकठिन तपस्या करने वाले व अथ निर्माणमें निपुन व मदोमत्त वात्राग लोगोंने परजय करनेवाले श्रीजिनेश्वरसरि व नगद्विग्यात बुद्धिमागर सरि, इन दोनों के शिष्य अभयदेव नाम के सूरिने श्रीसमजायांग ( चतुर्थीग ) की टीका समास से करी है

जैन सप्रदायभ यह नियम है, कि जब कोई किसी साधु के पास विशाभ्यास करता है या धर्मक्रियानुष्ठानाद करता है तब वह उसका शिष्य होता है शिष्य होने परत अगर धर्मांतर टाकर साधु होना

चाहेतो, सत्र से पहिले अपने पासका सर्वद्रव्यादि पदार्थत्याग करता है और कहता है कि " आज से मेने मेरा द्रिव्यादि पदार्थ त्याग किया व आगामी कालमें मैं भी कोई प्रकार द्रव्य ग्रहण कल्गा नहीं मुझे आप दीक्षा देकर मेरी आत्माका कल्याण करें मैं आपका आजम पर्यन्त दास रहूंगा ' ऐसी गुरु के समक्ष व पचों के समक्ष शिष्य प्रतिज्ञा करता है उस गुरुन दीक्षा लेनेवाले के माता पिता, या कुटुम्बी होयें, वे, दीक्षा देनेकी गुरुको अनुमति देते व अगर माता पिता वगैरेन होयें तो उनके प्रतिनिधि दूसरे लोग होकर शिष्य को दीक्षा देनेकी गुरु को आज्ञा देते हैं तत्र गुरु उस को दीक्षा देता है और पात्र देकर, मागकर उदर पोषण करने की गुरु, शिष्य को आज्ञा देता है, तत्र शिष्य भिक्षा मागकर उदर पोषण करता है और आजम पर्यन्त गुरुपूजा याने गुरु शुश्रूषा करे, गुरु की आज्ञा जमभर उल्टपन न करे, यावजीव गुरुका छिद्रपाने, गुरुका मान समान योग्य रीति से रखे गुरु की व गुरु के कुल की शोभा बढ़ायें उसको गुरु, अपना योग्य अनेवासी समझता है परंतु इतने पर भी यदि गुरु का चित्त शिष्य से असतुष्ट हो तो वह उस चेले को निकाल कर, दूसरे, त्रयस्थ को अपना शिष्य बनाकर उस को अपना अपिकार गुरु देसकता है

## द्विगुरुः

ठाणागमूत्रटीका प्रशस्तिमें अभयदेव के दो गुरु

चान्द्रकुर्लिनप्रणीताप्रतिग्रह विहार चरित श्रीनर्द्धमानाभिमान  
मुनि पतिपादोपमेदिन प्रमाणादित्युत्पादनप्रवण प्रकरणप्रमथ्यापिन प्रमुद्ध  
प्रतिग्रहप्रवन्तप्ररीणाप्रतिज्ञन प्रवचनार्थ प्रगान गान्प्रसरस्य मुविहितमुनि

जनमुखस्य श्राजिनेश्वराचार्यस्य तदनुजस्य व्याकरणादिशास्त्रकर्तुं श्राबु-  
द्धिमागराचार्यस्य चरणक्रमं चक्षरीकृतव्येऽ श्रीभद्रभयदेवमूरिनाम्ना  
मया महाश्रीरजितराज सनानमूर्तिना टाणागृहीति कृता.

### अर्थ

चन्द्रकूट के शास्त्रोंमें कहेहुये अप्रतिहत भ्रमणचरितगाले श्रीभद्र  
मानसूरि नामके मुनि की चरण सेवा करने वाला, २ प्रमाणादि की  
व्युत्तिमें प्रवीण, प्रकरण प्रयत्न करनेगाले, ४ विद्वानों के प्रतिप्रश्न  
वक्तृत्वकालमें निपुण, अप्रान्त गालमें उत्तमगणी के फैलानेगाला,  
मुद्रित साधुओं का मुद्रिया, श्राजिनेश्वराचार्य का, ४ व्याकरण शास्त्रों  
के कर्ता उनके छोटे भाई श्रीबुद्धिमागर इन के, चरण कमल के  
भ्रमरतुल्य, २ महाश्रीरजिनराज कुलानुपाधी, में अभयदेवने टाणाग-  
सुत्रकी टाका बनाई

### दिगुरुः

अभयदेव मूरि के दो गुरु होने उदले पाचवा अग  
भगरतीमूरकी टीकाकी प्रशस्ति का प्रमाणः ;  
जो अभयदेवमूरिने पि स ११०८ में  
बनाई है उसमें अभयदेवके दो  
गुरु लिखे हैं

“ चाद्रेकुले सद्गनकक्षकल्पे महाद्रुमो र्मर्मलप्रभायान् । छाया  
न्वित शम्भुशालशाय श्रीरुद्रमानो मुनिनायकोभन् तपुपकल्पो  
त्रिलसङ्घिगौ सद्रागमम्पूर्ण दिगोसमन्तान् । उभयतु शययगयनाच

वृत्तीश्रुतज्ञानपरागमन्तौ एकस्तयोसूरिजरो जिनेश्वरो, ह्यात स्तयान्यो  
मुनिबुद्धिसागर । तयो विनियेन विबुद्धिनाथल वृत्ति कृतैवा भयत्रेसुरिणा

### अर्थ

अच्छे निविडतृणतुन्य चन्द्रकुलमें धर्मरूप फलके प्रसादसे ज्ञाया  
युक्त प्रशस्त बडी बडी जिनकी शाखें हैं ऐसा वर्द्धमान मुनिनाथक  
नामका विशाल वृक्ष था

उस वृक्षके पुष्पतुल्य देदीप्यमान भ्रमणरूपी सद्गमने चारों  
दिशाओंमें व्यापनेवाले, ३ उदारवृत्ति के होकर, ज्ञानरूप परागत्राले, दो  
शिष्य हुये

एक सूरिज्य जिनेश्वर, ३ दुसरा बुद्धिमागर, उनदोनों के शिष्य  
अभयदेवसूरिने, विशेष बुद्धि न होने भी, यह टीका बनाई है

---

### द्विगुरुः

जिनचन्द्रसूरि कृत वीर चरित्र प्रगस्ति सवत् ११३९ कीमें

जिनचन्द्रसूरि के दो गुरु जिनेश्वरसूरि व बुद्धिसागरथे

श्री पीटरसन का तृतीय रिपोर्ट पत्रलेख पृ. ३०५

बोहिल्योत्र समथो सूरि सूरि जिनेसरो पदमो । गुरु साय ओ  
ध्वलाओ खरयमाहु सनई जाया ॥ हिमन्ताओ गगुत्र, निगया  
सयलक्षणपुञ्जा अन्नोप पुत्रिमाचद सुदरो बुद्धिसागरोसूरी निम्माधिपप्रव-

रामरण, उन्मयोरममर्भे एगनरायनिलगिर पयवायकुरग सीहाण  
तेमिं सीमो जिनच मृरी नामा समुण्यजो

### अर्थ

बोहिर की तरह समर्भ, पन्थि जिनेश्वरमृरि हुये जिहोसे  
ठज्जल एरतर सन्तानि उत्पन्न हुई, और जो हिमालय से गगा की  
तरह निकलकर सर्वजगन् के मनुष्यों के प्राय हुये दूमरे भी धेष्ट-  
याकरण उद्, प्रमुख प्रर्थोके निणान, प्फात चाटमें रेफ्ते हुये  
चरणोंमें पडे हुये हरिणको सिंके तुल्य, पूर्णचन्द्रान् गुटर बुद्धिसागर  
मृरि हुये, इन दोनों के शिष्य जिनचद्रमृरि उत्पन्न हुये

### द्विगुरु.

हरिभद्रमृरि के दो गुरु थे आनन्दमृरि व अमरचन्द्रमृरि

संवत् ११८०, से ११९३ तक

धमाम्मुदयनाय उच्यप्रभसृरि वृत्त

आनन्दसूरि रिति तस्य बभूव शिष्य पृथोऽपर शमरोऽमरचन्द्रमृरि ।  
वमद्विपक्ष दशना त्रिष पापदक्ष क्षोदक्षमौ जगति यौ मिशदौ विभात ३  
अप्नाघनाट्मयपयोनिप्रिमन्द्राट्टि मुद्राजुष किमनयो स्तुमहे महिम्न ।  
वात्पेपि निर्दलितनादिगजौ जगत् यौ व्यात्रसिंह शिशुना विति  
सिद्धरान ४ मिद्वान्तोपनिपत्रिपण्णहृदयो धीजमभूमिस्तयो पटे

श्रीहरिभद्रमरि रभय चारित्रिणामप्रणी ध्रान्वा शून्य मनाश्रयै रतिचिरा य  
ग्मितयस्त्रान्त । सतुष्टै कालिकालगौतम इति ग्याति रितेने गुणैः ९.

### अर्थ

उमसा पट्टिग शिष्य आनन्दसूरि इस नाम का हुआ दूसरा  
गातिप्रारण करनेवाला अमरचन्द्रसूरि हुआ जो जगत्में धर्मरूपहारी के  
गत के तुल्य पापयक्षके उखाड़नेमें निर्मल मालुम होता है पापरूप  
प्रथममुद्रको नष्ट करने के लिये मेरुपरतकी मुद्रा को प्रसन्नकरने वाले इन  
दोनोंकी महिमा की स्तुति कहातक करें कि- जिन्होंने धार्यास्यामें  
ही प्राप्ति हापियों को जाने और जिनको सिद्धराजने व्याससिंह शिशु  
प्रेमा कहा है ४

### द्वि गुरु.

चन्द्रसेन सूरिके दो गुरु थे प्रद्युम्नसूरि और हेमसूरि

उत्पाद सिद्धिनामक प्रकरण सटीकम् ।

श्रीचन्द्रसेनकृत सवत् १२०७

श्रीमाध्वन्द्रकुले भद्रगुणनिधि प्रद्युम्नसूरि प्रमु  
र्षे सुर्यम्य स सिद्धहेमनिधये श्रीहेमसूरि निधि ॥  
तच्छिष्यापयोत्र सूरिरजनि श्रीचन्द्रसेना भिय  
स्तेनेरक्षित प्रकाशपदनी नेय पुन साधुभि ॥  
ऋचा प्रकरणमेत यत्कुशल मिहार्जित मया किञ्चित् ।

तस्मात्तत्रैकवचिर्भवत जनमिद्विमद्रोप ॥

द्वान्तराग्रे शनेषु श्रीविक्रमनो गतेषु मुनिभिश्च । (प० १२०७)

चैत्रे सपन्नमिदं साहाय्यं चात्र मे नेमे ।

(गातिनाथ के भट्टारका ताडपत्र ॐ स्वगतका पीटर पीटर  
मा गि ३ ५२ २०९) श्रीमान् चन्द्रकन्ध, गृण के विमान,  
प्रद्युम्नसूरि ह्ये । मन के वसु, हेममरि ह्ये उन दोनों के शिष्य  
श्रीचन्द्रमेनने, या प्रकरण रचा व साधुओंने प्रकाश पर्वी को  
पहुचाया यह प्रकरण मने बनाकर जो कुछ कल्याण उपार्जन प्रिया  
है उस से तत्रचिन्ता मजन मिद्धि के श्रेष्ठ रोखाये होयें विक्रम  
के गत मरत् १२०७ के चैत्रमें यन्माम ह्या इममें नेमिनाथ  
का मुने मत्वाय था

## द्वि गुरु.

हेमदस गणिके नो गुरुधे मुनिसुन्दर गुरु और रत्नसागरसूरि  
न्यायार्थ मजपा हेमदसगणि कृत

“ श्रीसूरीधर सोमसुन्दर गुणे निंदशेप शिष्टाप्रणी गच्छे  
प्रभुरन्तशेखर गुरु र्दनीष्यते साम्प्रतम् । तच्छिष्याश्चहेमदसगणिना  
न्यायार्थ मज्जिका रक्षककार इत्यन्निर्मोऽनुधिमित सन्त्यापरनै र्भूत  
श्रीमद्वा द्रव्ये पुण्ड्रिणि जगच्च द्वौ गुरु र्पन्तवा चार्पणानि मयाप तीव्रतपमा  
तस्या न्वये जायते । प्रौढश्रीविरदेसमुन्दरगुरु स्तदृष्ट पूर्वा गिरे,  
गते श्रीप्रभुमोमसुन्दर गुरु र्भानु र्नेपिनो भवन् । यत्, भानो  
भानुशतानि पोटश लम्ब्ये नत्र मास्या श्विने । य छिष्या स्तततो

ऽधिका अपि मही मुचोत्पन्ते सदा । तस्या ह चरणा नुपामिपिमन्  
श्रीमत्तयागऽप्य क्षोणीत्रिश्रुत सोममुन्दरगुरो श्चारित्रि चूटामणे

अपिच

मारि येन निवारिता सुरकृता सस्य शान्तिस्त्वत्र सश्रीमान् मुनि  
मुन्दरसमिगुर दीक्षागुरु में भवन् । यस्य श्यामसरस्वतीति विरुद्ध  
विद्यात मुर्गे तले गुर्गे श्रीजपचन्द्रसूरि गुरु स्या यात् प्रमत्तिं स्मे ९

इति श्री तयागच्छपुरंदर श्रीसोममुन्दर स्वकीक्षा गुरु श्रीमुनि  
मुन्दरसूरि श्रीजपचन्द्रसूरि प्रमुख श्रीगुरु साप्रत विद्यमान श्रीग-ठनायक  
परमगुरु श्रीर नगेलरसरि चरणकमल सेविना महोपा पाय श्रीचारित्रगणि  
प्रसाद प्राप्त विद्या लयेन याचक श्रीहेमदत्त गणिना स्वपरोपकाराय  
सन् १९१७ त्र ज्येष्ठ सुदि द्वितीयाया न्यायार्थ मजपा नाम्नी  
वृहस्पति धिर नन्दान् एकम् लेख से पृष्ठ १७।१८

अर्थ हिन्दी

श्रीसोममुन्दरसूरि गुरु व सश्रेष्ठों में अप्रगी प्रभु रत्नसेपर इस  
समय श्रेष्ठियमान गच्छनायक ह उनके शिष्य हेमदत्तगणिने अछे  
रत्नसे भरी हुई यायार्थमजपिका ( -यायके अर्थकी पेट्री ) का आवेर  
का चतुर्ष नक्षत्रार पूर्ण किया

पहिले श्रीमान् चन्द्रकुलमें श्रीजपचन्द्रगुरु हुये, जिन्होंने कठेन  
नवश्रवा मे त्र प्रमिद्धि पाये, उन के कुलमें निपुण श्रीसमुन्दर गुरु  
हुय, उन के पाठको प्रसन्न ( पतेन ) के शिष्यपर नवीनमूर्ध  
श्रीसोममुन्दर गुरु हुय.



## काव्य

एक जाधिन मन्त्रीनामों ही मर्यादा १६०० किरणें प्रकाश करती हैं और इनके ( सोममुन्दर के ) गिष्य तो उनसे भी अधिक सदा पृथिवी को प्रकाशित करने हैं उन श्रीतपागच्छ पालक, जगत्प्रसिद्ध चारित्रचूडामणि श्रीसोममुन्दर के चरण का उपाशक और भी जिन्होंने ने गान्तिस्तव ( स्तोत्र ) रचकर देवता की की हुई महामारी का निवारण किया, वह श्रीमान् मुनिमुन्दर नाम का गुरु मेरा दीक्षा गुरु था वो, व जिसका “ कृष्णसरस्वती ” ऐसा विन्दु पृथ्वीके तलभाग पर प्रसिद्ध हुआ है, जह, जयचन्द्रमुरि भी, मुझे बड़ीभारी प्रमत्तता दे वो

यह श्रीतपागच्छ के इन्द्र श्रीसोममुन्दर स्वदीक्षा गुरु श्रीमुनि मुन्दरसुरि श्रीजयचन्द्र गुरु प्रमुख श्रीगुरु साप्रतिविद्यमान श्रीगच्छनायक परमगुरु श्रीरत्नशेखर सुरिके चरणकमल की सेवा करनेवाले महोपाध्याय श्रीचारित्र गणि के प्रसादसे पाया हुआ विद्याका लव ( लेश ) वाचक हेमहंस गणिने स्वपरोपकार के लिये सन् १९१९ के साल के ज्येष्ठ शुद्ध द्वितीया के दिन न्यायार्थ मञ्जूषा नामका बड़ी टीका बहुत काल आनन्दित रही

---

 छि गुरु

सोम धर्ममुरि के दो गुरु थे चारित्ररत्नमुरि व उदयशेखरमुरि  
उपदेश सप्तति, सोमधर्ममुरि कृत सवत् १९० =

जयन्तु ते वाचक पुङ्गवा श्री चारित्रनागुरो मनीषा ।  
पद्मागिता वर्ष विनेयवारा कुवन्त्यनेका उपकारकोणि १६ नद्धानर

सकल कोपिदमाननीया पूज्या जयन्द्युदयशेखर पण्डितेन्द्रा । जन्हे  
ममापि जडिमा हृदयप्रखडा भास्यद्वि रामशुचिगोभि रनुत्तपयै १७  
तयो पदाम्भोरहचञ्चरीक शिष्योऽभवन् पण्डित सोमप्रर्मः । शास्त्राणि  
भूयास्पपि यो वभाण मर्माणि तेषा न विप्रेः किन्तु १८ उपदेश सप्तति  
रिय, राचिरागुण त्रिन्दुवाणचद्रमिते १९०३ वर्षेऽनेनप्रयिता कृतार्थनीया  
ऽपि बुधधुर्थ १९

### अर्थ

जिनके पदाये श्रेष्ठ गिथ्य समुदाय, करोडा उपकार करते हैं  
वे मेरे गुरु, वाचक श्रेष्ठ, चारित्रन विजयी होयें उनके बहु  
मकर पण्डित माननीय पण्डितचद्र, उदयशेखर कि जिन्हों ने  
दैन्यमान व अनुत्तर अपनी पत्रि वाणियों से मेरे भी हृदयमें रही  
हुई जडिमा हरण कियी, उन दोनों (चारित्रन व उदयशेखर) के चरण  
कमल का खजन शिष्य पण्डित सोमप्रर्म, जो वृत्त से शास्त्रों को पदा,  
किन्तु उन्हों का मर्म न जाना इमने श्रेष्ठ विद्वानों की प्रार्थना करने  
से यह मनोव उपदेश सप्तति सत्रन् १९०३ के वर्षमें गयी

### द्वि गुरु.

शीलरत्नमूरि के दोगुन ये मेस्तुङ्गगणि व जयकीर्ति स १४९१

मेस्तुङ्गमूरि व जयकीर्ति मूरि यह शीलरत्नमूरि वृत्त मेस्तुङ्ग  
टीका की प्रशस्ति से बोध होता है कि शीलरत्नमूरि के दीक्षा गुरु  
मेस्तुङ्ग मूरि, जयकीर्ति त्रियागुरु ये देखो प्रो पीटर पीटरसन रिपोर्ट  
पृष्ठ २४९-२५०, ताडपत्र लेख

## अर्थ

पृथ्वी आ मेरुतामूरि इन्होंने दिशा दिया हुआ, आर उन के पादपर उदय पाये गुरु श्रोजपकीर्तिमूरि इन्होंने वास्तव से पदापा हुआ, शीलान आचार्य, अपने से अग्रगण्यद्विगणों को सम्मत व टर्कि यह टीका करी यह जैनोज्ज्वल बडे काव्यकी टीका विक्रमनृप के गत सन् १४९१ के वर्षमें, अनुशास नक्षत्र युक्त चैत्र मास पचमी बुधवार को भृगुप्रसिद्ध अण्णहिल्पुर पतनमें पूर्ण हुई CA\

## द्विगुरु

मर्मकुमार साधु के दो गुरु शास्त्रिभद्र कृत चरितमें,

१ विद्युत्प्रभसरि आद्यस ८ पृष्ठ ११४

२ प्रशुम्नसरि आ ३ लेख पृष्ठ ८०

ताडपत्र लेख पृष्ठ १७५

## द्विगुरु.

प्रमन्नचन्द्रसरिके दो गुरु ने अभयन व उनके बड़े भाई  
मिनचन्द्रसरि

ताडपत्र लेख पृष्ठ ५४ ३०६ ३०२

३ आर्यम लिख पृष्ठ ८०

## द्विगुरुः

टेनर्द्धिगाणेश्वरमा ध्रमण के दो गुरु थे लोहित्यसूरि और दृसगाणि  
सवत ९८०

“ रेवर्डसिंह म्बिट्टि हिमनताग-जुणा गोपि ने  
सिरिद्धभृद् द्विन्न लोहिच्च दृसगाणिणो य त्पेयरी

आथर्स पृष्ठ ५५ प्रो पी पीटर्मन का रि० ३ नाटपत्र लेख  
पृष्ठ ३०३ म्यत्रिणली प्रयकार्तीकीसूची पृ ५५

जिनत्तके दो गुरु रासिन् व जीपत्तै प्रो पीटर पीटरसनके  
चौथे रिपोर्टकी प्रय कर्ताओंकी सूचीपत्र पृ ३६ में

शुभांगीलके दो गुरु थे लक्ष्मीमागर और मुनिमुंदर स १५२१  
प्रो पीटरसन के चौथे रिपोर्ट की प्रयकर्ताओंकी यादी पृ १२१

लब्धिसागरके तीन गुरु थे उत्पयट्टम, ज्ञानमागर, व उत्पयमागर  
सस्रत श्रीपाल काया लब्धिसागर वृत

तत्पत्नीमल्लचक्रु मुरीन्द्रोत्पयल्लभा ज्ञानसागरसूरीद्रा गच्छे-  
न्द्रोत्पयसागरा ६ तत्पट्टे जयपट्टि श्रीलब्धिसागरसूरिभि गाथामयकथा  
म्भोने भंगै रेप क्रयो दृता ७ मुनीपुशरभूत्पेट्टे ( १५५७ ) प्रो  
पीटर पीटरसन का रिपोर्ट ३ पृष्ठ २२०, पीटरसनके रिपोर्ट ४ म  
पृष्ठ १४-१४-१७

## अर्थ

उन्के पाट के पक्ति की शोभा उदयरहभसुरि, नानसागरसुरि  
और गठके अद्र उदयसागरसुरि उन्हों के पाटपर त्रिजयी लघिसागरसुरि  
न गाधामयनधाण्या समुद्र मे यह कथा श्लोकोमें उद्धत की  
मरत १९ ७ म

## अन्यदीक्षित गुरु

सिद्धार्थकृत उपमितिभयप्रपञ्च सप्त ९६०

“ ततो भ दुःखमन्कीर्तिं ब्रह्मगोत्र विभषण । दुर्गस्वामी महाभाग  
प्रत्यात प्रविशतने ॥ प्रव्रज्या ग्रन्थतापेन ग्रह सदनपरित हिता  
सद्धर्ममाहान्म्य क्रियेयप्रकाशितम् ॥ पस्य तच्चरित नीक्ष्य गशाङ्ककर-  
निर्मलम् बुद्धास्तप्रत्यपादेन भूयासो मतत म्तादा ॥ सदीक्षादायक तस्य  
स्वस्यचाह गुरुत्तमम् ॥ नमम्यामि मन्भाग गगर्षि मुनिपुङ्गवम् ॥  
आचार्य हरिभद्रो मे धर्मबोधकरो गुरु ॥ प्रस्तावे भावतोहत सपवाद्ये  
निवेदित ॥ तान् पत्र लेख्य प्रष्ट १४७

## अर्थ

“ उम पीछे उदरसन्कीर्तिं व पृथ्वीमडलपर त्रिप्यान व ब्रह्मगोत्रके  
भूषण, दुर्गस्वामी हुये दीक्षालेने जिहोंने धनसे भराघर छोडकर  
त्रियासेही सद्धर्मका माहात्म्य प्रकाशिन किया व जिसका चन्द्रकी किरणोंसे  
निमल चरित देखकर उसके प्रत्ययसेहा बहुतसे जन्तु प्रबुद्ध हुवे  
उमको (दुर्गस्वामीको) दीक्षा देनेवालेको और मुझे खुदको दीक्षा देनेवाले  
गुरुको मैं मुनियोंमें श्रेष्ठ महाभाग गगर्षि को नमन करता हूँ आचार्य  
हरिभद्र मेरे धर्म बोध करनेवाले गुरु हैं भावसे प्रस्तावमें पहिले वही  
निवेदन किया हे

देहमहत्तर पृ IXI

सिद्धार्थ OXVIX पृ

## अर्थरक्षितमूरि के तीन गुरु

अर्थ रक्षित मूरिने तोसली पुत्रमे दीक्षा ली । न भद्रगुप्ताचाय के पास पूर्वेका अभ्यास किया, और वचनार्थ क पाम बाकी प्रश्न पट कर उनके चेरे हुये ।  
प्रो पीटरसन का ४ रि पृष्ठ ३४४

## जिनदत्तमूरि के तीन गुरु थे जिनप्रहलभमूरि--वर्मदेवगणि, व देवभद्रमूरि

रत्नसागर भाग २ पृष्ठ ११०

जिनदत्त का नाम सामचन्द्र था, जन्म समन् ११३२ में हुआ । आठ वर्षकी उमरमें, जिनप्रहलभमूरि से, प्रतिशेष पाकर, वाचक वर्मदेव गणि के पास दीक्षा ली, अर्थान् जैन साधु हुये, पीछे, गुरु के पास सपूर्ण शास्त्रोंका अभ्यास किया समन् ११६९ में देवभद्रमूरि आचार्यने सारि मत्र देकर सोमचन्द्र को आचार्य पद , दिया, और जिनदत्तमूरि नाम रखा

## चतुर्गुरुः

### उदयासिंहमूरि के चार गुरु ये

देखो सुवर्द्ध रायल वासयाटिक सोमापटी के गावे ब्राचके अप्रैल

१८८७ से मार्च १८९२ का जर्नल पृष्ठ ९

- १ भुवनरत्नमूरि दीक्षा गुरु
- २ नमिप्रभमूरि मामागुरु
- ३ माणिक्य प्रभु, शिक्षा गुरु
- ४ महिमचन्द्रमूरि पत्रप्रतिष्ठ गुरु

खास गुरु माणिक्य प्रभु के

(3) Bhuvanaratnasuri, Nemiprabhasuri, Manikyaprabhasuri, and Mahunachandrasuri With all these our commentator Udayasinhauri stood in a relation which he specifies The first was his dikshaguru The second was his Maternal uncle The third was his sikshaguru The third was his padapratishthaguru He adds that he was the servant of the third, Manikyaprabhasuri

## चार गुरुः

तरुणप्रभसुरि के गुरु चार थे

श्रावकप्रतिक्रमणमूरविररण पी पीटरसन रि ३ ताडपर

लेख पृष्ठ २२१ २२२

जिनप्रबोधाभिधसुरि रासीन् तत्पपूर्वा चल्चण्ड भानु ।  
 पते तदीये जिनचन्द्रसुरि रभूमनो भनपकारिमति ६ येना युगप्र  
 धानाना प्रसाद्य पद दैवतम् ॥ दीक्षा चिन्तामणीं मद्य ज्ञानतेजस्विनीं  
 दशै ७ पितृभ्योव्यसनिनासह्य येना वापितरा मापियश कीर्त्तिगणिमा  
 स पूरविद्या ममाणपत्त राजेन्द्रचन्द्रसुरीन्द्रै विद्या काचन २ । जिना  
 दिकुशलार्यं श्वादाध्याचार्यं पद चमे ९ अम्भोजा न्यकट बिन्दु निकरा  
 ह्याद्या मथापत्त स्वा वृत्ति तनुनेत ग धुनकणा नादाप ह्युच्चै पदै ॥ सुरि  
 श्रीतरुणप्रभः प्रमितये मुग्गानि मुग्गामनां पोटापत्तकमूर वृत्तिमन्त्रिबन्  
 सौटपात्रबोप्रदाम् १०

अर्थ

जिनप्रबोधसुरि इस नाम के जाचार्य थे उन के पाट कं  
 पर्वनरूपमूर्त्य ध क्षामदेव के जाननेवाले जिनचन्द्रसुरि हुये जिनयुगप्र-  
 धानों का पददेन ( चाण्दैय ) प्रमत्तोंका ज्ञान को तेजस्वीकरने

वाली चिंतामणि ( चिंतापूर्ण करनेवाली ) दीक्षा मुझे दीयी पितासे भी अधिक वास्तव्य जिन्होन मुझपर दिखाया ऐसे यश कीर्तिगाणिने मुझे पहिले दिया पढ़ाया, और कुछ कुछ विद्या रामेन्द्रचन्द्रसूरिन्द्रने पढ़ाई, व जिनकुशल ने मुझे आचार्य पद दिया व कमल के मकरद ( कमल के फूलका रजन ) के कणोंका समुदाय लाकर जैसे भ्रमर अपनी वृत्ति फेलाता है जैसे ऊँचे पर्दा के मुग्गसे भी मुग्ग आमा गलों को प्रमाण करने के लिये सुबसे समझने वाली पद आनन्दक सूत्र की टीका तरणप्रभसरिने लिखी।

जिनप्रबोध के गिन्य जिनचंद्रने तरणप्रभको दीक्षादी प्रो पी पी रि ४ पृष्ठ XXXV (९९) वग कीर्ति तरणप्रभ के विद्या गुरु थे प्रो पी रि ४ इटेकन आथर्म पृष्ठ XCIX (९९) रामेन्द्रचंद्र विद्यागुरु थे प्रो पी पी रि ४ इ०जा० पृष्ठ CVI १०६ जिनकुशलने आचार्य पद देकर अपना शिष्य व अधिकारी बनाया प्रो पी पी रि ४ पृष्ठ XXXIII(३३) तरणप्रभ के खाम गुरु जिन कुशल थे प्रो पी, पी रि ४ इ० जा० पृष्ठ XIVII (४७)

Our author Tarnnaprabhasuri was one of Jinakusala's pupils. He received diksha and Acharyapada from Jinakusala. Yasahkirti and Rajendrachandrasuri were his teachers. In v 13.

शिष्यकी बदला बदली व दूसरेके हाथसे  
दीक्षादिलाना व निकारदेना

जैनपति सम्प्रदायमें चेन्न मह प्क ऐसा पार्थ है कि गुरु मर निकारना चाहे तियाग्ये, चेन्का कुछ हक नहीं. अगर गुरु



अपना चल किमीको तेना चाह तो चेले को देसता है वेलेके भरण पोषण के बन्ले गुरु कंडे प्रकारका जगत्पार नहीं है

श्रीधर्ममूरी के पाठ पर श्रीजिनेन्द्रमुरि हुये वे खानिपिजय का बहुत म'न रखते थे एक दिन श्रीखानिपिजयजीके शिष्य दल्पत विजय को रूपलक्षणयुक्त देखकर जिनेन्द्रमुराने कहा कि हमारे शैलत विजय प्रमुख दशचेले ह परंतु पाठयोग्य ( जर्मान् मरे पश्चान् उत्तराधिकारी होने ल पर ) कोई दिवना नहीं तब खानिपिजयजीने कहा कि दल्पतविजय पर आपकी मरजी होयतो जाए रखो जब श्रीभूज्य जिनेन्द्रमुरिने दल्पतविजयको अपने पास रखा और अपना उत्तराधिकारी बनाया देखो अष्टांगारके अपेक्षा चतुर्थस्तनि गरीद्वार प्रतावना पृष्ठ ४६

श्रीममोद विजयके ९ चेले थे उनमेंसे दो चेलों को उल्ट सप्त गुरने अपने पाससे निकाल दिया बाकी तीन मेंसे शिवचंद्र रत्नचंद्र इन दोनोंको हेमविजयके पाससे दीक्षा दिलाई और बाद, देवेन्द्रमुरिके हाथ से दीक्षा दिलाकर, बड़ी दीक्षा दिलाई बाद सागरचंद्र वगैरोंके पास व्याकरणान्ति ग्रथ पढ़ाकर उनको पहिल पद दिलाया और अपना शिष्यबनाया यह अहमदाबादमें सन् १९४६ के सालमें छपी हुई चतुर्वेदस्तुतिशिकोद्वार नामके पुस्तक के पृष्ठ ४९ में लिखा है

## एक गुरुको छोडकर दूसरे गुरुका शिष्य होना

रत्नसागर भाग २ पृष्ठ १०८

श्री अभय वसुदे के पाठपर जिनमहामुरि हुये वे पहिले पूर्वगच्छीप चैत्यश्री जिनेश्वर मुरि के शिष्य थे जब उन्होंके पास

दशमी कालक सूत्र पढ़ते थे तब त्रैराग्य को प्राप्त हो के, गुरुजी से कहा कि साधुका आचार तो ऐसा है और आप ऐसा शिथिल-आचार क्यों धारण किया तब गुरुने कहा अभी हमारा ऐसा ही कर्मोदय है तब श्रीजिनप्रह्लमसुरि को पूछ कर, शुद्धक्रिया निधान परम सत्संग श्रीजिनअभय देवसुरि के शिष्य हो गये

शिष्य अपने पहिले गुरुको त्याग कर दूसरा गुरुकरसकता है

( रत्नमागर् भाग २ पृष्ठ १०१।१०२ )

नेमिचन्द्र के पादपर उद्योतनमूरि हुये इस के पाम ८३ साधुओंके शिष्य पढ़ते थे इन के पासचिनचन्द्रनामके आचार्य का उद्भमान शिष्य था वह गुरुका कथन अयोग्य समझ उद्योतनमूरि का शिष्य हो गया उस को अचार्य बनाया उद्योतनमूरि से ८३ साधुओं के शिष्य बोलें की “ हमारे मस्तकपर वासचूर्ण करो हम आपसे पढ़े हैं, इस से आपके शिष्य हैं तबगुरुने कहा “ वासचूर्ण लाओ ” तब शिष्यलोग उनात्रल ( शीघ्रता ) में सखे छाने का चूर्ण करके गुरु महाराज को दिया तब गुरु महाराज ने भी उस चूर्णको मंत्रकर ८२ शिष्यों के मस्तकपर करादिया और अपना शिष्य बनाया

जैनयति सप्रदाय में चले का वारसा जिसको मध्यतने व उसके महतने पसद किया हो वह वारस होता है

आमा स अ रि व्हा १ पृष्ठ ३०९—दायभाग पृष्ठ ४६  
कर्म १६२ पर टीप

“कोई गुरु मर्यत हुआ तो, उसका नाम उम के चेले को मिला है ऐसा नहीं परंतु मर्यत गुरुने जिसको मुर्तर किया हो, व जिसकी नेमणूक उम प उके दुसरे महतोंने कायम किया होगी, वह मर्यत का धारम होना है

### याति सम्प्रदाय में द्वियुरु का वारसा

बेसु बुलर प्रकरण १ भाग ३ पृष्ठ २४६-२४६

“जनी जो भी पहिलेसे एक गुरुका शिष्य होकर, अनतर, श्रीप्रजाविधिसे दुसरे का शिष्य हुआ तोभी उसने, पहिले गुरुको ओडा, ऐसा होता नहीं पहिले गुरुने जो नाम उसको दिया वो उसने अभी तक कायम रखा है अनएन उसके नामेका हक गया ऐसा कहने जाता नहीं सूत ता २९ सप्टबर मन १८४९

### शास्त्राधार

मि व्य पर १९ पृ १ पक्ति १३

धानप्रस्थ, सक्रयामी, और ब्रह्मचारी इनकी मिंदगी के, आचार्य, सच्छिष्य, धर्म भ्रानेकर्तार्थि, यह क्रममे अर्थात् उल्टे क्रममे वारस होने हैं मि व्य दाय भाग पृष्ठ २९१

सन्यासीकी मिंदगी तो सच्छिष्यनेही लेना, सच्छिष्य अर्थात् जो अप्यात्म शास्त्रका श्रवण, मनन, आचरण इस विषय में समर्थ हो वो कारण आचार्यादिक भी यदि बुर्वृत्त हैं तो धन लेनेको अधिकारी नहीं मि व्य दायविभाग पृष्ठ २९२

गुरु के पास अनेक शिष्य, सेवा शुश्रूषा करने वाले व आजम  
 पर्यन्त गुरु के पास रहकर जन्मव्यतीत करनेवाले हों, तो भी, यदि  
 उनमें कोई योग्य शिष्य नजर न दिखे, तो गुरु अन्यधर्मी योग्य पुत्र्य  
 को बुलाकर, अपना शिष्य बना के, अपनी गादी का मालक बना  
 सकता है ऐसा शास्त्रोंमें नियम है परिशिष्ट पर्यन्त हर्मन् जकोबी का  
 मुद्रित पृष्ठ १६२ से १७२ तक

तत्र प्रभवस्यामी कात्यायनकुलोद्भव ।  
 तीर्थप्रभायना कुर्वन्नुर्वान्ममपायवन् ॥ १ ॥  
 अ यदायक्ष्यकश्रान्तमुमाया शिष्टपर्यदि ।  
 निशीथे योगानिद्रास्थ प्रभवस्याम्याचितपन् ॥ २ ॥  
 भावा को मे गणपरो ऽर्हद्धर्माभोजभास्कर ।  
 सङ्घस्य य स्यात्ससारसागरे पोतसन्निभ ॥ ३ ॥  
 अनया चिन्तयालीढो गणे सङ्घे ऽपि च स्वके ।  
 उपयोगं चकारेष्टज्ञेयालोकप्रदोपकम् ॥ ४ ॥  
 स ज्ञानभानुनादित्यनेजसेन प्रमारिणा ।  
 नाद्राक्षीत्तादृश काश्चिदव्युच्छित्तिकर नरम् ॥ ५ ॥  
 उपयोग तत्रादापरेषामपि दर्शने ।  
 तादृशरार्थी पङ्कादप्युपादेय हि पङ्कजम् ॥ ६ ॥  
 ददर्श च पुरे राजगृहे शय्यम्भय द्विजम् ।  
 यह पमन्तमामन्नभव्य य सकुलोद्भवम् ॥ ७ ॥  
 अन्यत्रापि निहर्तव्य श्रमणैस्त्वराहितै ।  
 इत्यगात्प्रभवस्यामी तत्रैव नगरेत्तमे ॥ ८ ॥  
 आदिशच्च द्वयोर्मुन्योर्गम्यता यहायुक्ते ।  
 तत्र भिक्षार्थिनौ ब्रुव धर्मलाभाशिय युनाम् ॥ ९ ॥

अत्रि मायात्रिभिन्नत्र यत्राटट्टिजात्रिभि ।

अत्रि प्रम्याप्यमानाभ्या युवाभ्या वा रभाट्टमम् ॥१॥

अहो कष्टमहो कष्ट तत्र विज्ञायते न हि ।

अहो कष्टमहो कष्ट तत्र विज्ञायते न हि ॥ ११ ॥

अत्र बदनमालाङ्कद्वारमुत्तम्भितत्रजम् ।

द्वारमुक्ताचामनाहाय समिपापृत्तमाणनम् ॥ १२ ॥

चपालमद्दङ्गल वेदिमध्येद्वपानकम् ।

होमत्रव्यभृतानेरुपात्रमृत्त्रिभिणकुलम् ॥ १३ ॥

सामिनेन्यर्पणत्र्यप्राध्वर्युमरखाट्टकम् ।

तौ मुनी जग्मतुर्भिक्षासमये गुर्वनुज्ञया ॥ १४ ॥

॥ त्रिभिर्विशेषक ॥

भिक्षमादिसुभिर्विप्रोर्वेसृष्टात्रत्र तौ मुनी ।

गुर्वादित्तमहो नष्टमित्याद्यचतुरचकै ॥ १५ ॥

अत्रे दीक्षितस्त्रिमनामा शयम्भवो द्विज ।

यज्ञाट्टद्वारदेशस्थितो ऽश्रौपाद्वचस्तपोः ॥ १६ ॥

अचिन्त्यच्चोरशमप्रशाना सात्रयो ह्यमा ।

न मृषायादिन इति तत्रे सन्देगि मे मन ॥ १७ ॥

एति सन्नेहदोलात्रिष्टेन मनमा स त ।

किं तत्रामिति प्रपटोपाप्यार्थ सुधिया वर ॥ १८ ॥

उपायापो ऽनदत्तत्र वेदा स्वर्गापयगदा ।

ते वेग्भ्यो ऽपर तत्रामिति तत्रापिदो विदु ॥ १९ ॥

शयम्भवो ऽश्रयानून प्रनारथासे माशान् ।

यज्ञादिदक्षिणान्भोद्विजास्तत्रामिति मुरन ॥२०॥

वीतद्वेग वीतरागा निर्ममा निष्परिग्रहा ।  
 शान्ता मदर्पपो नैते वदन्ति पितृषु वाचिन् ॥२१॥  
 न गुरुस्त्र त्वया होतद्विश्वमाजम वञ्चितम् ।  
 नितान्त शिक्षणीयो ऽपि प्रत्युताद्य दुराशय ॥२२॥  
 यथास्थितमारयाहि तत्त्वमेवं स्थिते ऽपि भो ।  
 नो चेच्छेत्स्यामि ते मौलिं न हत्या दुष्टनिग्रहे ॥२३॥  
 इति कोपाद्यरुपांसिमावृष्टासिरलक्षि स ।  
 तन्मृयुनाचनापात्तपत्र माक्षादिवान्तरु ॥२४॥  
 उपायापो ऽप्यने दयौ मिमारयिपुरेव माम् ।  
 यथास्तत्त्वकथने समयो ऽयमुपागतः ॥ २५ ॥  
 इदं च पश्यते वेदेपान्नायो ऽप्येव न स्या ।  
 ऋष्य यथातत्र तत्त्व शिरश्छेदे हि तायथा ॥२६॥  
 तस्मात्प्रकाशयाम्याशु तत्त्वमस्मै यथातत्रम् ।  
 यथा जीयामि जीयन्ति नरो भद्राणि पश्यति ॥२७॥  
 इत्याचक्ष्याबुपाध्यायो यायन्कुशलमात्मन ।  
 अमुष्य यूपस्याधस्तान्न्यस्तास्ति प्रतिमार्हत ॥२८॥  
 पूज्यते ऽथ स्थितैत्रात्र प्रच्छन्न प्रतिमार्हती ।  
 तत्प्रभावेन निर्धिष्णामिदं यज्ञादि कर्म न ॥ २९ ॥  
 महानपा सिद्धपुत्रो नास्ति परमार्हत ।  
 अश्वमवर हन्ति प्रतिमामार्हतीं विना ॥ ३० ॥  
 ततो यूपमुपाध्यायन्तमुपाध्याय यथास्थिताम् ।  
 तामार्हप्रतिमा रात्रीं दर्शयित्वैवमत्रयीत् ॥ ३१ ॥  
 इदं हि प्रतिमा यस्य देवस्य श्रीमदर्हत ।

तत्र तद्गुह्येनो ऽर्था यन्ति तु रिडम्बना ॥ २२ ॥  
 श्रीमदर्हत्प्रणीतो हि धर्मो जीवद्रपात्मकः ।  
 पशुर्हिमात्मके यज्ञे धर्मसम्भारनापि वा ॥ ३३ ॥  
 जीवामो वयमेव तु हन्त तम्भेर भूयसा ।  
 तत्र जानीहि मा मुञ्च भव त्व परमाहृत ॥३४॥  
 चिर प्रत्नारितो ऽसि त्व यथाँ स्वोदरपूर्तये ।  
 नात परमुपाध्यायस्तस्मि स्वस्ति ते ऽनत्र ॥३५॥  
 शय्यम्भवो ऽपि त नत्या यज्ञोपाध्यायमत्रयीन् ।  
 त्वमुपाध्याय एवासि सत्यनत्त्वप्रकाशनान् ॥ ३६ ॥  
 इति शय्यम्भरस्मै सभेमयन्तचोपमाक् ।  
 सुरर्षिनामपात्रादि यज्ञोपकरण ददौ ॥ ३७ ॥  
 स्वयं तु निर्मगामानु मर्ष्या नौ गयेपयन् ।  
 ययौ च त्व्यदेरे प्रभवस्वामिमन्त्रिधौ ॥ ३८ ॥  
 वन्दे प्रभवस्वामिशद्रासर्गामुर्नीध स ।  
 धर्मलाभागिया तैश्चाभितन्त्रित उपाविसान् ॥ ३९ ॥  
 कृत्वाञ्जलिश्च प्रभवाचार्यपादान्वयानिज्ञपत् ।  
 भगवन्तो धर्मनत्त्व मूर्ध मे मोक्षकारणम् ॥ ४० ॥  
 प्रभवस्वाम्यथाचख्यावर्हिता धर्म आदिम ।  
 चिन्तनीय शुभोदकर्त यथात्मानि तथापरे ॥ ४१ ॥  
 वाच्य प्रिय मित तथ्य परस्याबाधक च यन् ।  
 तत्तथ्यमपि नो वाच्यं परबाधा भवेद्यत ॥ ४२ ॥  
 अदत्त नाददीताथ नित्य सन्तोषभागभवेत् ।  
 इहापि मोक्षसुखभागिनः सन्तोषभाग् जन ॥४३॥

ऊर्ध्वरेता भवे प्राण सर्जनो मैथुन त्यजन् ।  
 मैथुन खलु समारोपपदोद्वेह ॥ ४४ ॥  
 मुक्त्वा परिग्रह सर्व स्वशरीरे ऽपि नि मृह ।  
 आमारामो भवेद्विद्वान्पदीच्छेदपुनर्भ्रमम् ॥ ४५ ॥  
 अहिंसासृजनास्तेष्वग्न्याकिञ्चन्यलंश्रुणै ।  
 व्रते पञ्चभिरप्यत्र भयादामानेमुद्धरेत् ॥ ४६ ॥  
 ज्ञात्वा शय्यम्भयस्तत्त्व भनोद्विषः क्षणादभृत् ।  
 प्रभवन्नामिन यादान्नात्वा चैत्र व्यजिज्ञपत् ॥ ४७ ॥  
 अमद्गुह्यगिरा मे ऽभूदतत्त्वे तत्तन्धीश्विरम् ।  
 मृत्विण्टमपि हेमैर पीनो मत्तो हि पश्यति ॥ ४८ ॥  
 तदद्य ज्ञानतत्त्वस्य प्रव्रज्या दीयता मम ।  
 भयकूपे निपत्तेो हस्ताग्ध्वनसन्निभा ॥ ४९ ॥  
 ततश्च प्रभवस्वामी शय्यम्भयमहाद्विजम् ।  
 ससारैरिणो भीत परित्राजयति स्म तम् ॥ ५० ॥  
 परीपहेभ्यो नाभैवीम तपस्यमहाशय ।  
 दिष्ट्वा कर्म क्षिरामोति प्रत्युतोद्धृषिनो ऽभयत् ॥ ५१ ॥  
 तुर्यपष्टाष्टमादीनि दुस्तपानि तपासि स ।  
 तेपे तरा तपनेवत्तेजोभिरतिभासुर ॥ ५२ ॥  
 कुर्याणो गुरुशुभ्रया गुह्यात्प्रसात्त ।  
 महाप्राज्ञ क्रमेणाभूम चतुर्दशपूर्वभृत् ॥ ५३ ॥  
 श्रुतज्ञानाग्निना तुल्य स्यान्तरमिरामन ।  
 प्रभवस्तत्र पदे न्यस्य परलोकमसायपत् ॥ ५४ ॥  
 शय्यम्भयो यत्र पर्यत्राजीह्लोकस्मदाखिल ।  
 तद्वाया गुयतीं दृष्ट्वानुशोचन्निर्मम्यमाने ॥ ५५ ॥



अतो शय्यम्भवो भवे निद्रुरेभ्यो ऽपि निद्रुर ।  
 म्या प्रिया यौवनवर्ता मुशीलामपि यो ऽप्यमत् ॥१६॥  
 पुत्राशयैव जीवति योषितो हि पतिं विना ।  
 पुत्रो ऽपि नाभूतेन्या कथमेवा भरिषति ॥१७॥  
 पृच्छति स्म च लोकस्वामापि शय्यम्भग्रप्रिये ।  
 गर्भसम्भायना कापि किं नामास्ति तयोदरे ॥ १८ ॥  
 मनागिन्याभिधान्ये सापि प्राकृतभाषया ।  
 उवाच मणयमिति हृस्वगर्भा ऋभृत्तदा ॥ १९ ॥  
 तस्याश्च वदुधे गर्भं प्रत्याशेय शनै शनै ।  
 समये च सुतो जज्ञे तमनोम्भोरिचन्द्रमाः ॥२०॥  
 ब्राह्मण्या मणयमिति तदानीं कृतमुत्तरम् ।  
 इति तस्यापि बालस्याभिधा मगरु इत्यभृत् ॥२१॥  
 स्वयं मात्रा स्वयं धाया ब्राह्मण्या सो ऽर्भकस्तया  
 पास्यमान क्रमेणाभूत्पादचक्रमणभ्रम ॥ २२ ॥  
 अतीते चाष्टमे वर्षे पप्रच्छेति स मानरम् ।  
 क्व नाम मे पिता मानर्वषेणारिपरा ह्यसि ॥ २३ ॥  
 मानापि कथयामास प्रपन्नाय पिता तर ।  
 तदा त्वमुदरस्यो ऽभू पाळितो ऽसि मयार्भक ॥२४॥  
 अष्टदृष्टपूर्वा पितर त्वमायुष्यन्वथा ह्यसि ।  
 त्वामप्यष्टदृष्टृपय तया जनयिता तर ॥ २५ ॥  
 तव शय्यम्भवो नाम पिता यत्रतो ऽभवत् ।  
 प्रताये धृतभ्रमगै पर्यत्राज्यत कैगलि ॥ २६ ॥  
 पितु शय्यम्भास्यर्यैर्दृशनापोन्मुक सुप ।

निरियाय ग्रहाद्वालो वशयिन्ना म्रमानरम् ॥६७॥  
 तदा शय्यम्भराचार्यध्वन्याया विहरन्भृत् ।  
 बालो ऽपि तत्रैव यथागच्छत् पुण्यराशिना ॥६८॥  
 कायचिन्तादिना सुरि पुण्यपरिसरे व्रजन् ।  
 ददर्श दूरदायान्त त बाल कमलेश्रणम् ॥ ६९ ॥  
 शय्यम्भवस्य त बाल पश्यतो ऽग्नेरिन्द्रोडुपम् ।  
 ज्ञेहानिरेकादुष्टासस्तदाभूत्त्रिकाधिक । ॥७०॥  
 मुनिचन्द्रमस दूरत्त दृष्ट्वा गालको ऽपि हि ।  
 विकसद्भ्रान्त सो ऽभसद्यः कुमुत्कोपयन् ॥७१॥  
 आचार्यो ऽपि हि त बाल पप्रच्छातुच्छहर्षभाक् ।  
 को ऽसि न्व कुत आयामी पुत्र पौत्रो ऽसिकम्पवा ॥७२॥  
 सो ऽर्भको ऽभिन्धे राजगृहात्त्राहमागत ।  
 मनु शय्यम्भरस्यास्मि वत्मगोत्रद्विजमन ॥ ७३ ॥  
 मम गर्भस्थितस्यापि प्रत्रयामात्दे पिता ।  
 त गनेपयितुमह बन्ध्रमीति पुरापुरम् ॥ ७४ ॥  
 शय्यम्भर मे पितर जानते यदि तमम ।  
 पृत्रपादा प्रसीदत क सो ऽस्तीनि वन्तु च ॥७५॥  
 पितर यन् पयामि तदा तपाटसन्निधौ ।  
 पस्त्रिजाम्यहमपि या गतिस्तम्य सैर मे ॥ ७६ ॥  
 मुरि प्रोत्राच तात ते जानामि म मुहसव ।  
 शरिरेणाप्यभिज्ञध्वप्युध्यस्नामि त्रिद्वि माम् ॥ ७७ ॥  
 तममैव सकाशे न पस्त्रिज्या शुभाशय ? ।-  
 प्रतिपद्यन्व को नाम भेत् ि ८ ८

सूरिस्तु बाल्मादाय जगामाथ प्रतिश्रवम् ।  
 यत् लाभ सचितो ऽभिति चालोचपम्बयम् ॥७९॥  
 सप्तसायनिरनिप्रतिपादनपूर्वकम् ।  
 तमशालप्रिय बाल सूरिर्व्रतमजिग्रहत् ॥ ८० ॥  
 उपयोग ददौ सूरि क्रियन्स्यायुरित्यथ ।  
 पण्णामापात्न्भीति तच्च सद्यो विवेद स ॥८१॥  
 एव च त्रिन्तयामास शय्यम्भयमहामुनि ।  
 अन्यत्रायुरथ बालो भारी श्रुत्पर कथम् ॥ ८२ ॥  
 अश्विमो दशपूर्णा श्रुत्सार समुद्धरेत् ।  
 चतुर्दशपूर्वधरः पुनः केनापि हेतुना ॥ ८३ ॥  
 मणकप्रनिबोपे हि कारणे ऽस्मिन्नुपस्थिते ।  
 तद्गुद्गाम्यहमपि सिद्धातार्जममुच्चयम् ॥ ८४ ॥  
 सिद्धान्तसारमुद्ग्याचार्य श पम्भरस्तदा ।  
 दशवैकालिक नाम श्रुत्स्वप्नमुदाहरत् ॥ ८५ ॥  
 क्व चिकालपेलाया दशापयनगर्भितम् ।  
 दशवैकालिकमिति नाम्ना शास्त्र बभूव तत् ॥८६॥  
 अपाठयमणक त ग्रथ निर्ग्रन्थपुगव ।  
 श्रीमाशयम्भराचार्यया धुर्य कृपायताम् ॥ ८७ ॥  
 आराधनादिक कृत्य कारित सूरिभिः स्वयम् ।  
 पण्णामासान्ने तु मणक काल कृत्वा दिव ययौ ॥८८॥  
 विवेदाने तु मणके श्रीशयम्भरसूरयः ।  
 भवपन्नयनैश्चुञ्ज शारदमेवतन् ॥ ८९ ॥  
 यशोभद्रादिभि गिर्यरथ दु खितभिर्मनैः ।  
 सूरिर्न्यन्यनह रः किमिदं हेतुरत्र क ॥९०॥

ततो मणकवृत्तान्त सुतसम्बन्धवधुरम् ।  
 शिष्येभ्यो ऽकथयस्त्रिस्तज्जाम मरणात्रि ॥२१॥  
 उत्राच चैप बालो ऽपि कालेनाल्पीयसापि हि ।  
 पालि ॥मलचारित्रो ऽकार्थी काल समाधिना ॥ २२ ॥  
 बालो ऽप्यपमबालो ऽभूच्चरित्रेणेति सम्मदात् ।  
 अस्माकमश्रुसम्पात पुत्रजेहो हि दुम्यज ॥ २३ ॥  
 ऊचु शिष्या नमदमीवा यशोभद्रादयस्तन ।  
 पूजैरप्यममग्रव किमादौ ज्ञापितो न न ॥ २४ ॥  
 मणकशुल्लको ऽस्माकमय हि तनुभूरिति ।  
 अज्ञापयिष्यन्त्यस्मागुरुपादा मनागपि ॥ २५ ॥  
 गुरुरगुरुपुत्रे ऽपि त्रैनेति वचो जयम् ।  
 अकरिष्याम् हि तदा मय तन्पर्युपामनान् ॥२६॥युगम्॥  
 मूर्तिर्भूरिमुदियूचे तस्याभूत्सुगतिप्रदम् ।  
 तपोवृद्धेषु युष्मासु वैषावृत्योत्तम तप ॥ २७ ॥  
 ज्ञातास्मत्पुत्रसम्बन्धा यूय हि मणकान्मुने ।  
 नाकारयिष्यतोपास्ति स्वार्थं सो ऽथ व्यमोक्ष्यत ॥२८॥  
 अनुमत्स्यायुष ज्ञात्वा कतुं धृतपर मया ।  
 सिद्धान्तसारमुद्धृत्य दशवैकालिक कृतम् ॥ २९ ॥  
 मणकार्थं कृतो ग्रन्थस्तेन निस्तारितश्च स ।  
 तदेन सनृणोम्यद्य यथास्थाने निवेशनात् ॥१००॥  
 यशोभद्रादिमुनय सहस्रपाख्यनिद तदा ।  
 दशवैकालिक ग्रन्थ सत्ररिष्यन्ति सूरयः ॥१०१॥  
 सहो ऽप्यभ्यर्थयाश्चक्रे सूरिमानन्दपूरित ।  
 मणकार्थो ऽप्यय ग्रन्थो ऽनुगृह्णात्वाखिलं जगत् ॥

अत परं भविष्यन्ति प्राणिनो ह्यल्पमेवम ।  
 कृतार्थास्ते मणकरुद्धवन्तु त्वप्रमादत ॥१०३॥  
 श्रुताम्भोजस्य किञ्चिन्क दशरैकालिक ह्य ॥  
 आचम्याचम्य मोदन्नामनगारमधुव्रता ॥१०४॥  
 इति सहोपरोधेन श्रीशय्यम्भवसुरिभि ।  
 दशरैकालिकग्रन्थो न सरत्रे महामभि ॥१०५॥  
 श्रीमाञ्जय्यम्भव सूरिर्पशोभद्र महामुनिम् ।  
 श्रुतसागरपारीण पत्रे स्वस्मिन्नतिष्ठिपत् ॥१०६॥  
 कृत्वा मरण समाधिनागा-  
 दय शय्यम्भवमूर्खिर्लोकम् ।  
 श्रुतकेवलिनो निभे ऽपि कार्ये  
 किं मुह्यन्ति जगप्रदीपकला ॥१०७॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रारिचिन्ते परिकिष्टवर्णनि स्थनितवलीचरिते  
 प्रमवेदवत्त्वशय्यम्भवचरितवर्णनो नाम पञ्चम सर्ग समाप्त ॥

5 Sajjambhava He was a native of  
 Rajgraha and was next appointed as the Head of  
 the Church He was of Batsya gotra and was  
 converted by the appearance of an image of  
 Tirthankar Shantinath, when celebrating a  
 sacrifice as a Brahmin

## वासक्षेप विधि.



रायल एसियाटिक सोसायटी के मुम्बई ब्रांच का जनरल ब्हा  
 ८ के सन १८६३-६४ से १८६४-६९ के आर्टिकोरेयिन् रिमेन्स  
 मोपारा व पदन का पृष्ठ २९८

The powder which the Jainas make is of a pale yellow colour It is used for worship, for sprinkling on newly consecrated images, and on disciples when first admitted to holy orders

The Jain scented powder Vasakhepa, or more properly Vasakshepa, is made of sandalwood, saffron, musk, and Dryobalanops aromatica, *blimseni barasa* The last two ingredients are taken in very small quantities and mixed with saffron and water They are rubbed on a stone slab by a large piece of sandalwood, and a ball is prepared This ball is dried, powdered, and kept in silk bags which are specially made for holding it

१ जिन मनुष्य के नाम से मृत्युलेख में दान लिखा हुआ है, वह मनुष्य, मृत्यु लेख करने वाला मर्यपन हुआ तब, जीवन न हुआ वह दान दूसरे किसी मनुष्य के तरफ जाये, ऐसा मृत्युलेख करने वालेता अभिप्राय था यह मृत्युलेख पगमे दिखना न हो तो,

अत पर भविष्यन्ति प्राणिनो ऋष्यमेवम् ।  
 कृतार्थास्ते मणिकारद्वयन्तु त्यप्रसादन ॥१०३॥  
 श्रुताम्भोजस्य किञ्चिद्वक दशवैकालिक ह्य ॥  
 आचम्याचम्य मोदन्नामनगारमुवता ॥१०४॥  
 वति सहोपरोधेन श्रीशय्यम्भरमूरिभि ।  
 दशवैकालिकप्रन्थो न सत्रे महानभि ॥१०५॥  
 श्रीमाञ्जय्यम्भर सूर्यशोभद्र महामुनिम् ।  
 श्रुतसागरपारीण पदे स्वस्मिन्नतिष्ठिपव ॥१०६॥  
 कृता मरण समाधिनागा-  
 दथ शय्यम्भरमूरिर्ध्वलोरुम् ।  
 श्रुतकेरान्निनो निजे ऽपि कार्य  
 किं मुद्यान्ति जगप्रदीपकत्वा ॥१०७॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते पारोशीष्टपर्वणि स्पतिरावलीचरिते  
 प्रमवदेवत्वशय्यम्भरचरितवर्णनो नाम पञ्चम सर्ग समाप्त ॥

5 Sajjambhava He was a native of  
 Rajgriha and was next appointed as the Head of  
 the Church He was of Batsya gotra and was  
 converted by the appearance of an image of  
 Tirthankar Shantinath, when celebrating a  
 sacrifice as a Brahmin

## वासक्षेप विधि.



रायल एसियाटिक सोसायटी के मुम्बई ब्रांच का जनरल व्हा  
 ८ के सन १८६३ ६४ से १८६४-६९ के आन्टीक्वेरियन् रिसेस  
 सोपारा व पदन का पृष्ठ २९८

The powder which the Jainas make is of a pale yellow colour It is used for worship, for sprinkling on newly consecrated images, and on disciples when first admitted to holy orders

The Jain scented powder Vasakhepa, or more properly Vasakshepa, is made of sandalwood, saffron, musk, and *Dryobalanops aromatica*, *Umsens barasa* The last two ingredients are taken in very small quantities and mixed with saffron and water They are rubbed on a stone slab by a large piece of sandalwood, and a ball is prepared This ball is dried, powdered, and kept in silk bags which are specially made for holding it.

१ जिस मनुष्य के नाम से मृत्युलेख में दान लिखा हुआ है, वह मनुष्य, मृत्यु लेख करने वाला मर्यन हुआ तब, जीवित न हुआ वह दान दूसरे किसी मनुष्य के तरफ जाये, ऐसा मृत्युलेख करने वालेका अभिप्राय था यह मृत्युलेख पगमे दिग्गता न हो तो, वह



दान रहित होकर, मृत्युलेख करनेवाले के शेषग्रन्थों में जायेगा जिस मनुष्य के नाम से मृत्युलेखमें दान लिखा है, वह दान लेनेका अधिकार, उस मनुष्य के वारस मनुष्य के तरफ आने के लिये, मृत्युलेख करने वाला मरत हुआ, उस वस्तु वह या ऐसा ज्ञानित करना चाहिये (सन १८६८ का ऑक्ट १० कलम ९२)

२ मृत्युलेखमें दान जिस मनुष्य के नाम से लिखा, उस को वह दान किम वस्तु मिलना, यह न लिखने वह दान मोक्ष शर्तोंमें लिखा हुआ होने से, मृत्युलेख करने वाला जिस दिन मरत होगा उस दिनके उस मनुष्य का सत्य उस दानमें उपन्यत होगा और वह दान मिले सिवाय वह यदि मरत हुआ तो उसके वारस के मनुष्यों के तरफ से वह दान जाये (सन १८६९ का ऑक्ट १० कलम ९१)

३ असाधारण मृत्युलेख अगर पुराणी, साधारण मृत्युलेख से अगर पुराणी से किंवा जिस राति से असाधारण मृत्युलेख किया होते, वह व्यग्रहारीपयोगी होगा, उसी रीति से वह मृत्युलेख अगर पुराणा, रद्द करने का अभिप्राय, जिसमें दिखाया है वैसा पक्कादा कार्य करने से, किंवा रद्द करने का उद्देश्यसे, वह मृत्यु लेख करनेवाले ने खुदने मलाकर, अगर फाड़कर, अगर अपरीतिसे नष्ट करके किंवा समझ व उसको कहनेपर मे हमारे मनुष्यने वैसा करके नष्ट करने] से, रद्द करने का अधिकार मृत्युलेख करनेवाले को है (सन १९६९ ऑक्ट १० कलम ९९)

## यति लोगोंमें गुरु के मृत्युनाद गुरुकी मर्जा प्रमाणे यतिपत्तों का कर्तव्य

- १ तपागच्छ के श्रीपूज्य त्रिजयराजसूरि का देहान्त हुये बाद उन के भाई महेन्द्रत्रिजयने मुनिचन्द्रसरिको लाकर अपने हाथसे दीक्षा सन् १९९८ में देकर गादीपर बैठाया यह तपागच्छ के यतियों को व श्रावकों को मालुम है व उनको वशपरपरा उदयपुरदरवार से पाल्गी, दुशाला, छडी, बगैरे लवाजमा मिलता था सो मिला और राधनपुर के नम्रा साहेब के तरफ से डका निशान मिलता था सो भी मिला
- २ धनारी भगारि ( आत्रप्रान्त ) में श्रीपूज्य महेन्द्रसूरि को यतियोंने दीक्षा देकर गादीपर बैठाया
- ३ सन् १९६७ के कार्तिकम बीकानेर के श्रीपूज्य जिन कीर्तिसुरि गुजरे, उन के बाद उनके शिष्य चुन्निमाल को पतिया ने दीक्षा देकर गादीपर बैठाया
- ४ पालीनानागले उपाध्याय करमचन्द्र के शिष्य लखमीचन्द्र को उनके काकागुरु त्रिजयचन्द्र ने, सर्व यतियों के समक्ष दीक्षा देकर, करमचन्द्रजी का चेला बनाया उस वरत कर्मचन्द्रजी मरचुके थे सन् १९६९ में
- ५ जूनागढमें अभी लाधाजी महाराज हाल मौजूद हैं, उन के गुरु उस वरत मरचुके थे, उस वखत लाधाजी की उमर ८ वर्षकी थी यह योग्य अवस्थामें आने तक तपागच्छ के यति रूपविजय ने जाहगीर सभाली जब लाधाजी उमर में आये तब रूपविजय ने जयप्रतजा के नाम से दीक्षा देकर उनका चेला किया श्रीपूज न होते दीक्षा दी अभी जूनागढमें कायम हैं

- ६ अचलगठ के श्रीपूज्य के भाई भागवन्जी मरे बाद भाई साम्नी न सन् १९६६ के मालम दयामागरजीने मुर्द में उन के गुरु के नाम से दीक्षा दी और गतिमागर नाम रखा अभी मौजूद है
- ७ अहमदाबाद के रहनेवाले तपागठ के यति रत्नविजय गुजरे पीछे उनका चेला पुण्यविजय अर्दीशित या उसका टीसा वाला गौतम विजयने दीक्षा देकर रत्नविजयकी गार्दीपर बैठाया श्रीपूज कोई नहीं था
- ८ सूरनगले तपागठ के यति दापचदजा गुजरे बाद कई वष पीछे उनके शिष्य रविहम जो लालसोमन दीक्षा दी और दीप चदकी गार्दीपर बैठाया
- ९ खरतरगठ के यति मनसुगजी गुजर गये पीछे उनके काका गुरु तनसुवजीने उनके चेले जो दीक्षा देकर गुरुका का गार्दीपर बैठाया कोई श्री पूज नहीं था

उपर लिखी हुई हकाकत हमारे यानमें हे और ये मनुष्य अभी विद्यमान हैं

प राजन्द्रसोमजीने उपर लिखा हुआ हकाकत हमारे यानमें हेनेसे लिखा हे बाकी तलाम करनेसे एमे दावके बहुतहा निकलने म्भर हे द खुद.

लि लक्ष्माचद करमचद्रजी महाराज ना बदना वाचशो

सेक्रेटरी,  
यतिपाठशाला

श्री तिरापथ केशोर मठल  
श्री ज्ञानेश्वर

जैन दर्शन में  
तत्त्व-मीमांसा

—मुनि नम्रसत